मेरी आंखों से

श्रेष्ठ बंगला लेखकों की
चुनी हुई कहानियां

मेरी आंखों से

विमल मित्र, आशापूर्णा देवी, वनफूल, गजेन्द्रकुमार मित्र, दिव्येन्दु पालित, मिहिर आचार्य, सुनील गंगोपाध्याय, प्रथमनाथ बीशी, आइभि राहा तथा समरेश बसु की उत्कृष्ट कहानियां

क्रम

मेरी आंखों से

मेरी आंखों से

विमल मित्र

• • •

मेरी एक आदत से सभी परिचित हैं । लिखते-लिखते जब दिमाग खराब हो जाने जैसी अनुभूति होने लगती है तब मैं कलम रख सड़क पर निकल पड़ता हूं । जिस सड़क पर अधिक-से-अधिक भीड़ हो, उस पर घूमने से ही मेरा दिमाग ठंडा होता है । रास्ते में जितनी भीड़ हो उतना ही अच्छा है, उतना ही अधिक मुझे यह महसूस होता है मानो मैं समुद्र के किसी एकान्त किनारे पर घूम रहा हूं ।

जो लोग एकान्त पाने के लिये पहाड़ जाते हैं या समुद्र-किनारे जाते हैं वे लोग नहीं जानते कि निर्जनता मनुष्य का स्वास्थ्य खराब करती है । जगह जितनी एकांत भी होगी, मनुष्य उतना ही अधिक खुद को लेकर परेशान होगा । याद नहीं कहां तो पढ़ा था किसी का यह कथन कि, "The largest city is the lonliest place."

इसीलिये जब शाम के वक्त सड़क की भीड़-भाड़ में अकेला-अकेला घूम

ही मजा आता

र जनता का निष्कपट आचरण देखता हूं तो मुझे बहुत ही मजा आता
। उस वक्त कई घन्टों के लिये मैं खुद को भूल जाता हूं। अपनी पीड़ा भी
स्मृत हो जाती है। मुझे लगता है मानो अब मैं इस संसार के नाट्य-मंच
ा अभिनेता नहीं, सिर्फ एक दर्शक मात्र हूं।

ख़ुद को दर्शक समझने में जो आराम मिलता है उसकी शायद तुलना नहीं की
जा सकती।

मेरी अपनी समस्याएं भी उस वक्त जैसे मेरी नहीं रहतीं। अपनी पीड़ा भी
उस वक्त अपनी नहीं रहती। अगर एक ही वाक्य में कहूं तो उस वक्त मैं
सभी का होता हूं, सभी मेरे होते हैं, फिर भी मैं अकेला रहता हूं।

हां तो, इस वक्त दार्शनिक बातों को जाने दें। मैं दार्शनिक नहीं हूं। बल्कि,
कवि भी नहीं हूं। वो सब होने में बहुत लफड़ा है। उससे तो अच्छा है कि
मैं एक मनुष्य हूं। एक साधारण मनुष्य। इस अनुभूति में एक सांत्वना तो
है। साधारण होकर ही मैंने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है और साधारण
मनुष्य के रूप में ही इस दुनियां से चला जाऊंगा। इस कामना में एक विशेष
गैर-जिम्मेदारी एवं कर्तव्यहीन अलसता है जिसको भोगना, महसूस करना,
मुझे बहुत अच्छा लगता है।

इसी तरह एक शाम को घूमते-घूमते एक जगह भीड़ देखकर मैं ठिठक गया।
वह बड़े रास्ते का एक मोड़ था। सामने ही था थाना।

मुझे लगा किसी प्रकार की कोई दुर्घटना हुई है। एक आदमी को घेरकर खड़े
सभी लोग बहुत उत्तेजित थे। ऐसा लगता था कि उस व्यक्ति को सभी ने
पकड़ रखा है और उसे मार रहे हैं। लात, घूंसे, थप्पड़। पता नहीं, किस
अपराध की सजा दे रहे हैं उसे सब मिलकर। बेचारा आदमी कहने की
कोशिश करता है कि वह बेकसूर है, लेकिन उसकी सुनता कौन है।

उस आदमी के बगल में ही एक कार खड़ी है।

एक व्यक्ति चिल्लाता है, 'देखते क्या हो, गाड़ी में आग लगा दो।'

मुझे थोड़ा डर लगा, क्या सचमुच ही ये गाड़ी में आग लगा देंगे? लेकिन
नहीं, जनता में कुछ स्वस्थ मस्तिष्क के लोग भी थे। उन लोगों ने कहा,
'नहीं, नहीं, आग नहीं लगानी चाहिए। जब पुलिस मौजूद है तो सब कुछ पुलिस
के हाथ में ही छोड़ दो।'

पुलिस का एक सिपाही भी पास ही खड़ा था। अब उसने उस आदमी को पकड़ लिया, और पूछा, 'बोल, ड्राइवर कहाँ भाग गया, बोल ?'

रोनी-सी सूरत बनाकर वह आदमी बोला, 'मैं कुछ नहीं जानता। मुझे छोड़ दीजिये।'

'छोड़ियेगा नहीं उसको। किसी तरह भी नहीं छोड़ियेगा। बेटे की अच्छी तरह धुनाई करिये।'

जिन्होंने धुनाई करने का सुझाव दिया था वे लोग पहले से ही खुद भी भरसक धुनाई कर रहे थे उस बेचारे की। किसी ने उसके बाल मुट्ठी में पकड़ रखे हैं, तो किसी ने उसकी गर्दन पकड़ रखी है, तो किसी ने उसका गला पकड़ रखा है, तो किसी ने उसका कमीज खींचकर फाड़ दिया है।

मैंने भी उचककर देखा, उस व्यक्ति की हालत शोचनीय थी। कपड़े-लत्ते सब फट गये थे। नाक तथा मुँह से खून निकल रहा था। फिर भी किसी की सहानुभूति नहीं थी उस पर। सिपाही ने उसको पकड़ रखा था लेकिन लात, घूंसों तथा चाटों से बचाने की कोशिश वह भी नहीं कर रहा था।

बगल के एक व्यक्ति से मैंने पूछा, 'इस आदमी ने क्या अपराध किया है ?'

उस व्यक्ति ने बताया, 'इसने गाड़ी से एक आदमी का एक्सीडेन्ट कर दिया है।'

मैंने पूछा, 'शायद यह गाड़ी का ड्राइवर है ?'

उस व्यक्ति ने कहा, 'नहीं मिस्टर, यह ड्राइवर नहीं है। जो गाड़ी चला रहा था वह तो भाग गया है। वह पकड़ा जाता तो अब तक उसका भुरकस निकाल दिया होता।'

मैंने पूछा, 'तो क्या यह व्यक्ति गाड़ी का मालिक है ?'

'नहीं भई, मालिक का चेहरा क्या ऐसा ही होता है ? आप देख नहीं रहे हैं, कितनी कीमती गाड़ी है ? यह आदमी तो ड्राइवर की बगल में बैठा हुआ था। शायद ड्राइवर का दोस्त है। ड्राइवर भाग गया है और यह भाग नहीं सका।'

मैंने पूछा, 'तो फिर सब लोग मिलकर इसे क्यों मार रहे हैं ? इसको मारने से क्या फायदा ?'

...ल-बगल के सभी लोगों ने मुझे जलती निगाहों से देखा, मानो मेरी दलील ...मी को भी पसन्द नहीं आई।

...क सज्जन बोले, 'मिस्टर, इसीलिए तो आये दिन एक्सीडेन्ट होते रहते हैं। ...न लोगों को सजा दिये बगैर एक्सीडेण्ट भी बन्द नहीं होंगे।'

सिपाही अभी तक उस आदमी से जिरह ही किये जा रहा था। पूछ रहा था 'बोल, कहां गया ड्राइवर ? उसका घर कहां है ?'

आदमी बोल रहा था, 'मैं कुछ भी नहीं जानता। वह गाड़ी लिये जा ... था, मेरा जान-पहचानवाला था, लेकिन उसका घर कहां है, मैं नहीं जानता।'

'घर कहां है, नहीं जानते ? मजाक समझा है क्या ? चल, थाने चल।' ...कर सिपाही ने भी एक धौल उसकी पीठ पर जमा दी।

बेचारे आदमी ने एक बार फिर कहने की कोशिश की, 'हुजूर, मुझे मारिये ...न। नाम-पता मुझे मालूम होगा तभी तो बताऊंगा ?'

'तो, न पता बताएगा, न नाम बतायेगा ? यह तो बहुत ही शैतान है। बिना अच्छी तरह ठुकाई हुए कुछ उगलनेवाला नहीं है।'

...कर फिर उस बेचारे को एक धौल जमा दी।

मैं खड़ा-खड़ा सब कुछ देखता रहा। यह कैसा न्याय है ? अपराध कोई करे और दण्ड किसी को मिले ! मैंने एक बार विरोध करने का विचार किया। सोचा कि कहूं, आपलोग राम के अपराध में श्याम को सजा क्यों दे रहे हैं ? लेकिन उस वक्त मेरी बात कौन सुनता भला !

मैंने देखा कि सिपाही भी जनता के पक्ष में ही था। वह भी चाहता था कि उस आदमी को सजा मिले। कारण कुछ हो या न हो, पर एक व्यक्ति को सजा दे पा रहा है शायद यही उसकी पद-मर्यादा के लिये गौरव ... बात थी।

भीड़ जितना ही ईंधन जुटाती थी सिपाही उतना ही उत्तेजित-उल्लसित ... जा रहा था।

और उसी वक्त एक घटना घटी। एक सज्जन ने हठात् यहां अपनी ... रोकी। गाड़ी से उतरते ही वह बोले, 'अरे, यह गाड़ी तो मिस्टर ...

की है।'

मिस्टर दासगुप्त !

बात मेरे कानों में भी पड़ी। सिर्फ मेरे कानों में ही क्यों, वहां उपस्थित सभी के कानों में ही पड़ी। बात पुलिसिये के कान में भी पड़ी।

उसने पूछा, 'कौन दासगुप्त ?'

वे सज्जन भीड़ को चीरकर अब सिपाही की ओर बढ़ गये। बोले, 'अरे भाई, यह गाड़ी मिनिस्टर की है। मिनिस्टर काशीकान्त दासगुप्त की। होम मिनिस्टर। उनकी गाड़ी यहां कौन लाया ? ड्राइवर कहां गया ?'

इतनी देर बाद सिपाही की समझ में बात आयी। अब उसके चेहरे पर भय, भक्ति, श्रद्धा के भाव प्रस्फुटित हुए। बोला, 'हमारे होम मिनिस्टर की गाड़ी है ? तो पहले क्यों नहीं बताया आपने ? मैं भी तो इतनी देर से यही कह रहा हूं कि यह ड्राइवर की गलती नहीं है।'

जो लोग इतनी देर से उस आदमी की मरम्मत करने के लिए उद्यत-तत्पर थे वे भी ज़रा अचकचा गये।

सिपाही ने भीड़ की तरफ देखकर डांटा, 'यहां भीड़ क्यों कर रहे हो तुम लोग ? भागो। जाओ यहां से। भाग जाओ।'

लोग विमूढ़-से हो गये। सिपाही की डांट खाकर कुछ लोग तो थोड़ा पीछे खिसक गये लेकिन उनमें कुछ साहसी लोग भी थे, वे नहीं खिसके। बोले 'होम मिनिस्टर की गाड़ी है तो क्या हुआ ? होम मिनिस्टर हैं तो क्या भगवान हो गये ? बुला लाओ अपने होम मिनिस्टर को, अभी होम-मिनिस्टरी का मजा चखा देते हैं।'

अब सिपाही को ज़रा गर्म होना पड़ा। शायद वह भी डर गया था। अचानक अपनी कमर से ह्विसिल निकालकर ज़ोर से बजा दी उसने।

और साथ ही आने में दो-चार कांस्टेबल लाठी घुमाते हुए दौड़े आये। कमर में रिवाल्वर टंगी हुई थी।

'क्या हुआ है यहां ? क्या हुआ, भई ?'

इधर लोगों ने शोर मचाना शुरू किया तो उधर पुलिस ने लाठी घुमाना।

और पता नहीं कहां से ईंट, पत्थर तथा सोडावाटर की बोतलें आदि पुलिस

...र बरसनी शुरू हो गया। ... जिधर भाग सका भागने लगा। झट-पट सड़क की बत्तियां बुझनी शुरू हो गईं। कहां गई वह गाड़ी, और उस आदमी का क्या हुआ, मेरी बिल्कुल भी समझ में नहीं आया। चारों तरफ टीयर-गैस छूटने की आवाज और धुंए से भरा वातावरण था। क्षण भर में ही वह जगह मानो युद्ध-क्षेत्र में बदल गयी।

मैं भी वहां अधिक खड़ा नहीं रहा। चुप-चाप वहां से निकलकर अन्य इलाके की ओर चला गया जो बिल्कुल शान्त था।

□

यहां तक तो सब ठीक ही था। ऐसी घटनाएं तो कलकत्ता महानगरी के लिए आम बात है। इस घटना को लेकर कहानी लिखना उचित नहीं। लेकिन कहानी बन गई। यह साधारण घटना ही दूसरे दिन सुबह कहानी बन गई।

दूसरे दिन सुबह अखबार में खबर थी :

पिछली शाम को कुछ उपद्रवी लोगों द्वारा मुरारी-पुकुर थाने पर आक्रमण ... जाने के कारण पुलिस को उन पर गोली चलानी पड़ी।' घटना का ...रा देते हुए आगे लिखा था, 'उस उपद्रवी दल को शक था कि, स्वराष्ट्र ...री श्री काशीकान्त दासगुप्त की कार में बम है और इस शक के कारण ...स दल ने कार को रोक लिया। गाड़ी की तलाशी लेने के बाद जब कहीं कुछ नहीं मिला तो उपद्रवी गाड़ी में आग लगा देना चाहते थे कि आखिर पुलिस को बाध्य होकर गोली चलानी पड़ी। स्वराष्ट्र मंत्री श्री काशीकान्त दासगुप्त दिल्ली गये हुए हैं। उनको उक्त खबर ट्रंककॉल द्वारा बता दी ग... है। स्वराष्ट्र मंत्रालय के एक व्यक्ति के बताने पर तीन उपद्रवियों ... गिरफ्तार किया गया है। अभी तक किसी के हताहत होने का समाचार न... मिला है। जांच जारी है।'

■ ■

प्राणों से प्रिय

आशापूर्णा देवी

■ ० ० ०

थाने, पुलिस सुपर के घर, अस्पताल, आदि बहुत-सी जगहें आने-जाने, जाने-आने, बहुत दुःख, बहुत कष्ट, कितनी ही जिरह, कितने ही अपमान और कितनी ही ग्लानि के एक दीर्घ दिन के महासमुद्र को पार कर जब शचिनाथ घर लौटे तब रात बहुत बीत चुकी थी।

दिन भर की इस तकलीफ और परेशानी में कौन-कौन उनके साथ थे, यह शचिनाथ को इस समय याद नहीं आ रहा है। क्या भानजा निमाई भी था ? और छोटा साला निधु ? और मित्र देवेश ?

शायद वही लोग साथ आकर उसे पहुंचा गये हैं ? या कि वे लोग भी यहीं रुक गये हैं ? क्या टैक्सी से सभी एकसाथ उतरे थे, और टैक्सी खाली लौट गई है ? या शचिनाथ अकेला ही उतरा था, बाकी सब चले गये हैं ?

शचिनाथ ठीक तरह से याद नहीं कर पा रहे हैं, लेकिन हठात् उन्हें लगा कि अगर वे लोग भी यहां उतरे होंगे तो यह उनकी बहुत बड़ी गलती होगी।

उनको भी शचिनाथ की ही तरह प्यास लगी होगी। एक समुद्र को पूरी तरह सोख लेने जैसी प्यास! इस पर मैं कहां है इतना पानी! इसके अलावा, शायद उन्हें भूख भी लगी होगी। सुबह से ही तो शचिनाथ के साथ घूमते रहे हैं।

फिर भी शचिनाथ इस मुहूर्त याद नहीं कर पा रहे कि सचमुच कौन-कौन थे उनके साथ?

मानो पेट से गले तक धूल भरी पड़ी हो, ऐसा महसूस हो रहा था। भीतर से बहुत जोर की उबकाई उठ रही थी। आह, काश, इस कमरे में एक सुराही पानी होता!

पर यह कमरा शचिनाथ का स्टडी-रूम था। इस कमरे में सुराही या घड़ा रहने का सवाल ही नहीं उठता। सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते सीढ़ियों के बीच में बने नीची छतवाले इसी कमरे में शचिनाथ ठहर गये थे; दो तल्ले तक नहीं गये।

किस तरह जा सकते हैं?

वहां लीला जो होगी।

वहां जाने पर उससे आमना-सामना करना पड़ेगा।

आश्चर्य की बात है कि, शचिनाथ के पास कोई आ नहीं रहा है। क्यों नहीं आ रहा है? डर से? जिस डर से शचिनाथ दो तल्ले नहीं गया?

लेकिन, फटिक तो आ सकता है?

उसे किस बात का डर है? घर के एक छोकरे-नौकर से अधिक तो कुछ नहीं है वह। उसमें भला इतनी बुद्धि या चिन्ता कहां है जो सोचेगा कि, बाबू के कमरे में अभी नहीं जाना चाहिये! बाबू का मन ठीक नहीं है!

इतना बुद्धिमान न होकर अगर फटिक बेवकूफ की तरह ही अचानक इस कमरे में आ जाय, तो शचिनाथ उससे एक गिलास पानी मंगवा सकते थे।

लेकिन आज वह भी मूर्ख की तरह काम नहीं कर रहा है।

इधर शचिनाथ के पेट में ऐंठन हो रही है। भयानक ऐंठन हो रही है। शायद शचिनाथ बेहोश हो जायेगा। आह, बेहोश होने से पहले अगर एक गिलास

पानी मिल जाता। सिर्फ एक गिलास। ठण्डे पानी का भरा हुआ एक बड़ा गिलास।

शचिनाथ से थोड़ी ही दूर, बिल्कुल थोड़ी ही दूर वह इच्छित वस्तु है, खुद शचिनाथ के ही कमाये रुपयों से खरीदे फ्रिज के अन्दर। इसी समय उठकर, फ्रिज खोलकर, चार बोतल निकालकर गटा-गट पी सकता है।

लेकिन ऐसा करना क्या शोभनीय होगा ?

शचिनाथ ने सोचा।

जबकि शचिनाथ को इस समय इतना भी ठीक से याद नहीं है कि दिन भर वे किसके साथ घूमते रहे हैं, किस-किसके साथ बातें करते रहे हैं, फिर भी उनके मन में यह बात आयी कि, 'क्या ऐसा करना शोभनीय होगा ?'

गत रात जिसके बेटे का खून हुआ हो, दिन भर जिसको उस खून के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते बीता हो, खुद अपनी ही नजरों से देखकर अपने ही बेटे की लाश की शिनाख्त करनी पड़ी हो, और यह रिपोर्ट लिखकर आना पड़ा हो कि, 'हां, मेरा बेटा पार्थनाथ, उम्र बाईस वर्ष, पोस्ट-ग्रेजुएट का छात्र, कल रात जब खाना खाने बैठ रहा था कि पता नहीं किसने उसे बाहर से आवाज दी और उसको बुला ले गये। फिर, उसके बाद, वह नहीं लौटा।' वही आदमी खुद अपने हाथ से फ्रिज में से पानी लेकर पीयेगा ? छी: छी: !·····और फिर वह दूसरी बात ? उस बात को अभी कोई नहीं जानता। अगर यह बात भी सामने आ गई, तब ?·····

तब लोग क्या कहेंगे शचिनाथ को ?

तो क्या किसी को बुलाकर ही शचिनाथ एक गिलास पानी मंगाये ? लेकिन क्या ऐसा करना अच्छा लगेगा ?

आश्चर्य की बात है, पार्थनाथ की वे बड़ी-बड़ी आंखें, बिखरे-बिखरे बाल, बुद्धि-दीप्त युवा चेहरा, ऐसे पुत्र का गत रात खून हो गया है, और तब भी शचिनाथ है कि बैठा-बैठा सोच रहा है, क्या अच्छा लगेगा और क्या अच्छा नहीं लगेगा ?

लेकिन पानी तो चाहिए ही।

शचिनाथ मन को कड़ा करने की कोशिश करने लगे। शचिनाथ फटिक को

आवाज देने की कोशिश करने लगे पर नहीं, गले से आवाज ही नहीं निकल रही है। क्या गले को लकवा मार गया है? या शचिनाथ गूंगा हो गया है?

अब क्या करे शचिनाथ?

अब शचिनाथ मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा कि कोई आ जाय इस कमरे में।

और शायद सच्चे मन से की गयी प्रार्थना का असर भी होता है। इसलिये फटिक ही आया। वह चोर की तरह दरवाजे पर आ खड़ा हुआ।

शचिनाथ के हाथ मानो स्वर्ग लग गया। बोले, 'एक गिलास पानी ला।'

फटिक ने झिझकते-झिझकते कहा, 'बुआ-मालकिन ने हाथ-मुंह धोकर कपड़े बदलने को कहा है।'

'जो कहता हूं, वह कर।'

फिर शचिनाथ ने अचानक ही लड़के को धमकी दी, 'पानी ला।'

फटिक जल्दी-जल्दी वहां से चला गया। थोड़ी देर बाद ही फ्रिज खुलने की आवाज सुनाई दी। शचिनाथ को महसूस हुआ कि यह आवाज भी इतनी मधुर हो सकती है, इसका तो उनको ज्ञान ही नहीं था आज तक।

फटिक हाथ में एक बोतल लिये वापस उनके पास और भी चोर की तरह आ खड़ा हुआ। बोला, 'गिलास तो मिल नहीं रहा है।'

'गिलास नहीं मिल रहा है? अच्छा ही है।'

ठंढे पानी की वह बोतल शचिनाथ ने लगभग छीनते हुए ही लड़के के हाथ से ले ली; और फिर वह पानी, सब कुछ शीतल करता हुआ, एक मरुभूमि के रास्ते से नीचे उतरने लगा। शचिनाथ ने सोचा—मन, प्राण, आत्मा, स्नेह, शोक, ये सभी मिथ्या हैं। सत्य कुछ है तो वह है शरीर। शरीर ही स्वामी है। शेष सभी तो सिर्फ दास हैं।

अगर ऐसा नहीं होता तो पानी की धार गले में उंड़ेलते ही ऐसा क्यों लगता कि सभी कष्टों से मुक्ति मिल गयी है!

खाली बोतल लौटा रहे थे कि लड़के का चेहरा उतरा हुआ-सा देखकर उन्होंने पूछा, 'शायद अभी तक तूने खाना नहीं खाया है?'

फटिक चौंक उठा।

इस ममता भरे प्रश्न के लिये वह स्वप्न मे भी प्रस्तुत नहीं था इसीलिये उसने चौंककर धीरे-से ना में सिर हिलाया।

शचिनाथ ने फिर पूछा, 'शायद खाना नहीं बना है ?'

सबसे ऊपर शरीर का ही महत्व नहीं होता तो पानी पीने के साथ-साथ ही क्या शचिनाथ ऐसा एक अति स्वाभाविक प्रश्न पूछ सकते थे ?

फटिक ने रुलाई के आवेग को दबाते हुए कहा, 'सुबह भी खाना नही बना था।'

'ओह, तो आज घर मे किसी ने भी नही खाया है ?'

'मैंने और रसोइये ने दोपहर मे मूडी खाई थी।'

शचिनाथ ने चट् से पूछ ही लिया, 'और तुम्हारी मालकिन ?'

'मालकिन ?'

फटिक ने बड़े उत्साहित स्वर मे बताया, 'मालकिन ने तो पानी की बूंद तक ग्रहण नही की है। बुआ-मालकिन ने बर्फ डाला हुआ शरबत ले जाकर, मिन्नत करके, पिलाना चाहा था लेकिन मालकिन ने गुस्से मे वह शरबत नाली मे फेंक दिया।'

बर्फ डाला हुआ शरवत ! नाली में फेंक दिया !

शचिनाथ स्तब्ध रह गया।

शचिनाथ आज अपनी ही नजरो मे बहुत क्षुद्र, दीन, हीन हो उठा। अब इसके बाद तो लीना के सामने जाने काबिल ही नही रहा। तो क्या करे शचिनाथ ? फटिक को मना कर दे ? कह दे कि, 'मैंने तुमसे पानी मांगकर पीया था यह किसी से नही कहना !'

इसका मतलब शचिनाथ और अधिक अकिंचन हो जाये ? और अधम हो जाये ? नहीं।

तो क्या बात को थोड़ा घुमाकर कहे कि, 'स्नान के पहले मैंने पानी पीया है, सुनकर, तेरी बुआ-मालकिन गुस्सा होंगी, समझे ? इसलिए यह किसी से मत कहना कि मैंने पानी पीया है।'

हां, इस तरह कहा जा सकता है।

इस तरह कहूंगा तो फटिक भी असली बात को पकड़ नहीं पायेगा। या फिर अगर यों कहूं कि—

गत रात में शचिनाथ के बड़े लड़के का खून हो गया था और उस खून के जुर्म में शचिनाथ का छोटा लड़का पकड़ा गया है। इसके बावजूद, शचिनाथ अभी यहां बैठा-बैठा तिकड़म भिड़ा रहा है, सोच रहा है कि एक साधारण-सी झूठी बात को किस तरह से कहे कि वह सुनने में सच्ची और वाजिब लगे।

शचिनाथ के बड़े लड़के की हत्या की बात तो बहुत लोग जानते हैं और अब तक बाकी सब ने भी जान ली होगी। हो सकता है, कल के अखबार में मोटे-मोटे अक्षरों में नाम देकर ही खबर छपे, लेकिन शचिनाथ के छोटे लड़के के बारे में अभी तक कोई नहीं जानता—सिवाय उन लोगों के जो दिन भर उसके साथ रहे थे।

कौन हैं वे लोग ?

शचिनाथ का भानजा, साला, और मित्र ? यही न ?

तो क्या वे लोग जगह-जगह यह कहानी सुनाते फिरेंगे ?

कहेंगे, 'पुलिस आजकल बहुत ही मुस्तैद हो गई है। खून करने के साथ-साथ ही खूनी को पकड़ लिया। अब आशा होती है कि देश में शांति कायम हो जायेगी। भई, तीन-चार लड़के इस काम में एक साथ थे; सभी को झट् से पकड़ लिया। उन्हीं में शचिनाथ का छोटा लड़का शक्तिनाथ भी था, जिसकी उम्र है अट्ठारह साल। इसी वर्ष तो बी० ए० पार्ट वन की परीक्षा दी है उसने।'

शचिनाथ के बड़े लड़के के साथ जो कुछ हुआ वह तो जरा भी अविश्वास योग्य नहीं है क्योंकि वह शहर की नित्य की घटनाओं में से ही एक थी। लेकिन छोटे लड़केवाली बात ? क्या इससे अधिक अविश्वसनीय भी कोई खबर हो सकती है इस दुनिया में ? अतः इसी बात को लेकर शहर भर में चर्चा फैलेगी। तब यह खबर लीला के कानों में भी जायेगी।

शचिनाथ का साला अपने भानजे की जमानत देना चाहता था। बहुत दौड़-धूप की थी, लेकिन इसके लिये पुलिस तैय्यार नहीं हुई। अगर पुलिस राजी हो जाती तो किसी तरह यह खबर लीला से छिपायी जा सकती थी, लेकिन अब इस खबर को किस प्रकार सजाये कि—

फिर वही बातों को सजानेवाली तिकड़म सोचने बैठ गया शचिनाथ !

उन्होंने अवश्य यही कहा था, 'कहीं कोई गलतफहमी हुई है। ऐसा हो ही नहीं सकता।' यह बात निमाई, निधु और देवेश ने कही थी, पर शचिनाथ को ऐसा नहीं लगता। शचिनाथ सोचता है, कहीं कोई गलतफहमी नहीं हुई है।

हालांकि, शचिनाथ के छोटे लड़के शक्तिनाथ के वहां होने की तिल भर भी सम्भावना नहीं थी। बल्कि, शक्तिनाथ के तो उस समय कलकत्ता में होने की ही बात नहीं थी। शक्तिनाथ एक छोटा सूटकेस लेकर परसों सुबह ही यह कहकर गया था कि 'चार-पांच दिन के लिये मैं कलकत्ता के बाहर जा रहा हूं।'

परसों से कल तक, क्या चार दिन पूरे हो गये ? हो सकता है, कहीं लौटते समय रास्ते में ही तो पुलिस ने उसे झूठ-मूठ ही—शायद निधु ने भी तो यही कहा था।

शचिनाथ ने उत्तर दिया था, 'महिषादल से लौटते समय बेहाला रास्ते में नहीं पड़ता है, निधु।'

हां, शक्ति परसों यही कहकर गया था कि महिषादल जा रहा है।

बिना किसी काम के ही महिषादल जाने की बात सुनकर शचिनाथ को अच्छा नहीं लगा था। उन्होंने सोचा था, बहुत ज्यादा हाथ के बाहर हुआ जा रहा है लड़का। बाप की पॉकेट से रुपये खर्च करेगा आराम बन्दकर। लेकिन यह सब बातें इस जमाने के अन्य बापों की तरह शचिनाथ ने भी मुंह खोलकर कही नहीं।

शचिनाथ ने सिर्फ इतना पूछा था, 'अचानक ही कलकत्ता के बाहर जाने का उद्देश्य क्या है ? और क्या नाम है तुम्हारे गन्तव्य-स्थल का ?'

शक्तिनाथ ने पर्यटन की दृष्टि से किसी दर्शनीय स्थल का नाम नहीं बताया; बल्कि आवेगभरे स्वर में ही बोला था, 'महिषादल का नाम कभी नहीं सुना आपने ?'

'महिषादल का नाम कभी नहीं सुना मैंने ?' अवाक् होकर शचिनाथ ने बेटे के वाक्य को ही दोहराया।

'और क्या ?' कहकर शक्तिनाथ खट-खट करता तेज कदमों से नीचे उतर गया।

'वस हो गया न ?' लीला ने कहा, 'मन की निकल गई न ? गाल आगे करके थप्पड़ खानेवाली वात हुई न !'

शचिनाथ उसी वक्त चिल्ला पड़े, 'इसका मतलव मुझे यह पूछने का भी हक नहीं है कि लड़का कहां जा रहा है ?'

'नहीं। कुछ भी पूछने का हक नहीं है। आजकल वह जमाना नहीं रहा।'

वह जमाना नहीं रहा, अतः शचिनाथ को चुप रह जाना पड़ा था, जबकि और सब वातों में जमाना ज्यों-का-त्यों था।

पार्थ जव वापस नहीं लौटा तो इस जमाने के अन्य सभी वापों की तरह शचिनाथ को भी रात वारह बजे तक पूरा कलकत्ता शहर छानना पड़ा था। ढूंढ़ना पड़ा था अस्पतालों एवं थानों में। फिर वह भयानक खवर सुनने के वाद मे तो मानो वेहद मानसिक यंत्रणा के वेड़े पर चढ़कर ही अगाध समुद्र जैसा एक दिन पारकर, और एक मरुभूमि साथ लेकर, लौटा था शचिनाथ।

◘

लेकिन आजकल इन सव का कोई उपाय नहीं है।

गत रात के नौ वजे से हुई अव तक की सारी घटनाओं को चित्र की तरह सजाने की कोशिश की शचिनाथ ने।

पार्थ पढ़ते-पढ़ते उठ आया था। वोला था, 'मां, मुझे भूख लगी है, खाना दो।'

पार्थ हमेशा ऐसा ही किया करता था। छोटेपन से ही उसकी आदत थी कि भूख लगने के वाद उसे एक मिनिट की देर भी सहन नहीं होती थी।

लीला ने रसोइये को आवाज दी। ठीक उसी समय वाहर से किसी ने पार्थ को भी आवाज दी। फटिक ने आकर कहा, 'वड़े भैय्या, आपको एक लड़का वुला रहा है।'

'लड़का वुला रहा है ?'

लीला ने नाराज होकर कहा था, 'तव तो हो गया खाना !' एक भयानक और अशुभ क्षण में ही शायद वह अशुभ वात लीला के मुंह से निकली थी।

'तुम थाली परोसकर लाओ न मा, मैं अभी आया ।'

कहकर पार्थ गया था सो फिर नहीं लौटा ।

बहुत देर होती देखकर लीला ने कहा था, 'फटिक, जरा देखकर आ तो सडक पर खड़ा किससे बात कर रहा है लडका ?'

फटिक ने अम्लान स्वर मे कहा, 'सडक पर थोड़े ही खड़े हैं भैया । वे तो उसी समय लड़कों के साथ चले गये थे ।'

चला गया ? खाना परोसने को कहकर चला गया !

लीला हांफती-सी मेरे पास आकर बोली थी, 'अजी, तुम जरा बाहर आकर देखो न, पार्थ ने मुझसे खाना मांगा और अचानक पता नही बाहर से किसने पुकारा, उनके संग ही चला गया । मुझे बहुत चिन्ता हो रही है ।'

शचिनाथ ने कहा था, 'ओह, तो चिन्ता करने का जमाना नहीं गया अभी तक ?'

लीला ने धिक्कारते हुए कहा, 'छी , ऐसे मौके पर तुम मुझसे बदला चुका रहे हो ? तुम्हे शर्म नही आती ? कैसे बाप हो तुम !'

'हां, तुम ठीक ही कहती हो ।'

शचिनाथ उसी समय घर से निकल गया था ।

दुकानें तो सभी बन्द हो चुकी थी, सडक सुनसान पडी थी । शचिनाथ का दिल किसी अज्ञात आशंका से काप उठा था । मोहल्ले का जो भी व्यक्ति शचिनाथ को दिखाई पडा उसी से पार्थ के बारे मे उन्होने पूछा । किसी ने कहा, नही, मैंने नही देखा । किसी ने कहा, हा, थोडी ही देर पहले एक लडके के साथ जाते देखा था ।

उसके बाद ?

उसके बाद बगल के पडोसी भवेशबाबू के घर से फोन करने शुरू किये थे । याद आता है, फोन-पर-फोन करते गये थे वे । और उसके बाद ? नही, उसके बाद कुछ भी याद नही । सब कुछ धुंधला हो जाता है ।

याद नही कर पा रहे हैं कि कब पुलिस ने आकर पूछ-ताछ की थी, 'आपका एक लडका और भी तो है न ? क्या नाम है उसका ? कितनी उम्र है ?'

याद नही कर पा रहे हैं कि कब निधु ने आकर कहा था, 'हा, मैं उनलोगों के

साथ जाकर अपनी आंख से देख आया हूं। शक्ति ही है।'

सिर्फ इतना याद है कि अभी थोड़ी देर पहले लौटते समय निधु ने कहा था, 'जरूर कहीं कोई गलतफहमी हुई है। नहीं तो ऐसा हो ही नहीं सकता। असंभव। हो सकता है, वह वहां से जल्दी ही लौट आया हो और रास्ते में—'

और जवाब में शचिनाथ ने कहा था, 'बेहाला तो महिषादल से लौटने के मार्ग में आता नहीं है, निधु।'

उसके बाद फिर सब धुंधला हो जाता है।

क्या उनलोगों ने हाथ पकड़कर शचिनाथ को इस सोफे पर लाकर बैठा दिया है ?

हठात् ही उनको याद आया कि फटिक नामक भूख का मारा लड़का आज सिर्फ मूड़ी खाकर ही रह गया है।

फिर हठात् ही यह याद आया कि सुषमा ने बर्फ डालकर शरबत बनाया था और लीला को पिलाने के लिये मिन्नतें कर रही थी कि लीला ने उस मूल्यवान वस्तु को नाली में फेंक दिया।

काश कि वही चीज इस वक्त कोई शचिनाथ को लाकर देता !

शचिनाथ के दिमाग पर फिर कुहरा-सा छा गया।

लेकिन शचिनाथ के पास कोई भी नहीं आ रहा है, जबकि सुषमा शचिनाथ की ही बहन है।

इसका मतलब, लीला की अपेक्षा वे लोग शचिनाथ से अधिक डरते हैं। इसका मतलब, उन्होंने दूसरी खबर भी सुन ली है। लेकिन लीला ? कहीं उसे भी नहीं सुना दी हो वह खबर ! ऐसा वे लोग कर सकते हैं भला ? वे भी तो मनुष्य हैं। या पाषाण हैं ?

'बाबू, बुआ-मालकिन ने कहलाया है कि चाय का पानी रख दिया है, अतः आप नहा लीजिये।'

'चाय का पानी ?'

हठात् ही मानो शचिनाथ को दो तल्ले पर जाने का एक सहारा मिल गया हो। जो जगह उनको इतनी देर से खींच रही थी वहां सिर्फ इसलिये नहीं

गये कि अनजाने में ही सीढ़ियों के बीच बने कमरे में वे ठहर गये थे। बस इसी लज्जावश वह अब तक ऊपर नहीं गये थे।

अब शचिनाथ ने बाकी बची सीढ़ियों को पार किया और अस्फुट स्वर में चिल्लाये, 'क्यों ? मेरे लिए चाय का पानी क्यों रखा ? मैं खूब शीतल होकर लौटा हूं न ! इसीलिये मुझे बर्फ डालकर शरबत-वरबत देने की जरूरत नहीं समझी। क्यों ?'

अपनी आवाज अपने ही कानों में बहुत भद्दी और बेसुरी लगी शचिनाथ को। सुषमा को भी लगी।

फिर भी स्वर तो था।

स्वर जिससे सहारा मिलता है।

स्तब्धता भयंकर होती है। शब्दहीनता प्रेत की तरह गला दबाने आ जाती है। सुषमा अपने बड़े भाई की आवाज सुनकर हिम्मत कर आगे बढ़ी, अस्फुट स्वर में बोली, 'रात हो गई है न, इसीलिये—'

'हुं ह, इसीलिये ! तो इसका मतलब है कि दिन भर मेरे गले में कोई शीतल जल ही डालता रहा है न !'

सुषमा ने मानो अपने भाई के सूखते गले को महसूस किया, बोली, 'अभी लाती हूं।'

सुषमा ने और भी एक बात कही, बहुत ही अस्फुट स्वर में, 'मैंने चाय की बात इसलिये कही थी कि वे लोग भी चाय ही पीना चाहते हैं।'

वे लोग कौन ?'

वे लोग से मतलब ?

ओह ! निमाई, निशु और देवेश ?

तो वे शचिनाथ को उतारकर चले नहीं गये ? वे यहां रहेंगे, बैठेंगे, और कल भी [illegible] है। हो सकता है, रात का खाना भी वे यहीं खायेंगे, इसके लिये इतनी देर में अब भोजन बनेगा !

इधर शचिनाथ को फिर पटिक का चेहरा याद आ गया। [illegible] देवेश भी, पटिक भी आ सकेगा।

ताज्जुब की बात है! शचिनाथ क्या पत्थर का बना हुआ है? शचिनाथ के एक लड़के का खून हो गया जो इस समय मुर्दाघर में पड़ा हुआ है, दूसरे को खून के जुर्म में थाने में बन्द करके रखा गया है, और इधर शचिनाथ है कि फटिक के खाने की बात को लेकर चिन्ता कर रहा है? उस फटिक को लेकर जो घर का एक अकिंचन नौकर मात्र है।

'भैया!'

शरबत से भरा हुआ कांच का बड़ा गिलास हाथ में लिये सुषमा खड़ी थी।

एक बार तो शचिनाथ की इच्छा हुई कि गिलास पर टूट पड़े, लेकिन सब जगह कुहरा छा जाने पर भी मस्तिष्क का एकाध कोना अभी भी बहुत साफ था। अतः शचिनाथ को ख्याल आया कि लीला के बारे में पूछने का यह अच्छा सुअवसर है; लीला के पास पहुंचने का भी यही स्वर्ण अवसर है।

इसीलिये हाथ न बढ़ाकर उन्होंने पूछा, 'भाभी ने कुछ खाया-पीया कि नहीं?' भाभी से उनका मतलब अवश्य ही 'तुम्हारी भाभी' से था।

सुषमा को मन-ही-मन जोर की हंसी आई, लेकिन ऊपर से बहुत ही मरी-सी आवाज में, मानो वही अपराधिनी हो, बोली, 'मैं तो कह-कहकर हार गई—नाराज होती हैं।'

'नाराज होने का मतलब? नाराज होने की क्या बात है?'

कहकर मानो स्वयं भी गुस्से में भरकर बड़बड़ाते हुए अपने शयन-कक्ष में घुस गया शचिनाथ। कल से जिस कमरे को आंख से देखा तक नहीं था, उसी कमरे में शचिनाथ इसलिये गुस्से का दिखावा कर बड़बड़ाता हुआ घुस गया था कि शायद इस गुस्से के बहाने ही पत्नी से कुछ-न-कुछ बोलना तो सहज हो जायेगा।

लेकिन कमरे में घुसते ही सचमुच के गुस्से से शचिनाथ की समस्त स्नायु-शिरायें दप-दप कर सुलग उठीं।

शचिनाथ का मन हुआ कि चीखकर कहे, 'ओह, तभी! तभी तुम्हें इतनी विलासिता सूझती है! शरबत का गिलास नाली में फेंक देने की विलासिता!' लेकिन इच्छा होने से ही तो सब बातें कही नहीं जा सकतीं। पृथ्वी की चरम अविश्वसनीय घटना के कारण सब कुछ उलट-पलट हो जाने पर भी 'क्या अच्छा लगेगा और क्या अच्छा नहीं लगेगा' का भेद तो कभी नहीं मिटेगा।

इसीलिये अपनी चीख पड़ने की इच्छा को शचिनाथ ने रोक लिया। भीतर जल रही आग को नियंत्रित करने की कोशिश करने लगा।

पर इतना बड़ा ढोंग देखकर क्या वैसा करना सम्भव था? सिर्फ ढोंग ही नहीं, अश्लीलता।

शचिनाथ का शयन-कक्ष अभी भी पहले की ही तरह सजा हुआ है। उसी तरह खूबसूरत रंगीन चद्दर बिछा पलङ्ग। उसी तरह किताबों की रैक पर सजी हुई छोटी-छोटी गुड़ियों की कतार। मेज पर टाइम-पीस के पास कांच के दो पक्षी। सामने दीवार पर झूलता लीला द्वारा अपने बचपन में कार्पेट पर बुना प्राकृतिक दृश्य। कांच की अलमारी में करीने से सजी, लीला द्वारा संचित की हुई बहुविध शौकीनी और सजावट की चीजें। सभी बातें तो ज्यों-की-त्यों, हमेशा की तरह, ठीक-ठीक हैं। कहीं कुछ भी तो अस्त-व्यस्त या इधर-उधर बिखरा हुआ नहीं है।

और ठीक पहले की ही तरह, हमेशा की ही तरह, फुल स्पीड में सिर पर पंखा चलाये और स्वच्छ धुली हुई साड़ी पहने लेटी हुई है लीला।

इतनी अस्वाभाविकता कैसे सहन की जा सकती है?

हालांकि दरअसल इसमें अस्वाभाविकता की कोई बात नहीं थी। अगर कोई आकस्मिक दुर्घटना घट जाय, तो क्या व्यक्ति घर-गृहस्थी को उजाड़कर, सब कुछ तहस-नहस कर डालता है? सोने की जगह सोता नहीं? कि बैठने जगह बैठता नहीं? कि पहनने के कपड़ों में धूल-मिट्टी रगड़कर उन्हें मैला कर डालता है?

शचिनाथ ने यह युक्ति-सगत बात क्यों नहीं सोची?

शचिनाथ की आंखों के समक्ष कल रात से लेकर आज दिन-भर का अजस्र घृणित, कुत्सित, वीभत्स दृश्य तैर उठा। शचिनाथ के पेट में फिर उबकाई जोर मारने लगी।

शचिनाथ ने कर्कश और टूटे हुए शब्दों में कहा, 'शरबत क्यों नहीं पीया तुमने?'

यही तो कहना चाहता था शचिनाथ। यही कहने के लिये तो वह गुस्से का दिखावा करके इस कमरे में आया था। लेकिन क्या इसी तरह से बोलना भी चाहा था उसने?

लीला ने शचिनाथ से यह बात सुनने की उम्मीद नहीं की थी। वह उठकर बैठ गई, और बोली, 'तुम भी यही बात कहते हो !'

'कहूंगा क्यों नहीं ? आखिर खाये-पिये बिना तो काम चलने से रहा । अभी ना करोगी तो फिर मांगकर खाना-पीना पड़ेगा। मरुभूमि की बालू से तो पेट की भूख-प्यास बुझ नहीं जायेगी !'

लीला को लगा कि शचिनाथ अभी भी अपना वही बदला ले रहा है । वह अपने अन्तर की तीव्र, तीक्ष्ण रुलाई के आवेग को सम्हाल नहीं सकी। हिचकियां बंध गयीं। रोते-रोते बोली, 'मेरा पार्थ खाना मांगकर भी बिना खाये चला गया, लौटकर नहीं आया और मैं खुद खा लूं ? जब तक तुम लोग उस खूनी शैतान को पकड़कर दण्ड नहीं दिलवाते, तब तक मैं—'

शचिनाथ के हृदय में फिर वही आग सुलग उठी । शचिनाथ ने सोचा, इसी क्षण इसकी शोक की इस विलासिता को वह मिटा सकता है, वह अस्त्र उसके हाथ में ही मौजूद है।

जबकि थोड़ी ही देर पहले तक वह बातों को इस तरह सजा-संवार रहा था कि किसी तरह भी वह दूसरी बात लीला के कानों तक न पहुंचे ।

इनका मतलब, पूरी स्पीड में चलते पंखे के नीचे साफ-सुथरी साड़ी पहने सोई लीला को देखकर उसे ईर्ष्या हुई ! कभी वह इसी लीला को 'प्राणों से प्रिय' सम्बोधन से पत्र लिखा करता था, यह बात भी इस समय भूल गया।

फिर भी शचिनाथ ने चीख-चिल्लाकर कुछ नहीं कहा । बल्कि, शान्त स्वर में ही कहा, 'उसको दण्ड मिलने से क्या पार्थ लौट आयेगा ?'

'जानती हूं । जानती हूं । वह लौट नहीं आयेगा, जानती हूं ।' लीला उन्मादित आंखों से देखती हुई बोली, 'फिर भी मेरे कलेजे की यह अग्नि तो ठंडी हो जायेगी ।'

'जरूर ठंडी हो जायेगी !' शचिनाथ ने व्यंग्यपूर्वक कहा, 'तब तो तुम्हें वह खबर सुनानी ही पड़ेगी । तो सुनो, उस शैतान को ढूंढने की आवश्यकता नहीं है । वह पकड़ा गया है ।'

'पकड़ा गया है ? पकड़ा गया है वह ? कहां है ? कहां है वह ?'

'हाजत में ।'

'हाजत मे ? तुम देख आये हो उसे ? पूछा था कि पार्थ ने उसका क्या बिगाड़ा था ?'

'नहीं पूछा।'

'नहीं पूछा ?' लीला बिलबिला उठी, 'कैसा पत्थर दिल पाया है जी तुमने ? मुझे ले चलो। मैं जाकर देखूंगी उसे।'

'देखने की जरूरत नहीं पड़ेगी।' मानो शचिनाथ किसी दर्शनीय वस्तु को देख रहा हो, इस तरह आहिस्ते-आहिस्ते, संभाल-संभालकर कहा उसने, 'बहुत देख चुकी हो उसे।'

'बहुत देख चुकी हू !'

अचानक लीला भयभीत हो जाती है। बहुत ही भयभीत। लीला की रुलाई रुक जाती है। लीला के गले से एक अस्फुट शब्द निकलता है, 'कौन ?'

'तेरा छोटा बेटा !'

ज्योतिष

वनफूल

० ० ०

ज्योतिप के आने की बात थी। मैं सूटकेस सजाकर उसके इन्तजार में बैठा हूं। करीब महीने भर पहले हम दोनों का कश्मीर जाने का प्रोग्राम बना था। खुद उसी ने यह प्रस्ताव मेरे सामने रखा था। बोला था, 'भाई परेश, अब तो कलकत्ता जरा भी अच्छा नहीं लगता है। बम-बाजी और राजनीति, सस्ते नाटक और फालतू सिनेमा, घेराव-स्ट्राइक और हमले—मेरा तो दम घुटा जा रहा है, भाई। चल कहीं भाग चलें। कश्मीर चलेगा? इन दिनों मंजुलि भी कश्मीर में ही है। रहने की कोई असुविधा नहीं होगी। मंजुलि के पिता वहां बड़े अफसर हैं। उन्होंने मुझे निमंत्रण भी दिया है। चल, कश्मीर ही चला जाय।'

परसों ज्योतिप ने ही रिजर्वेशन के दो टिकट खरीदकर मुझे दिये थे और कहा था कि आज ठीक समय पर वह टैक्सी लेकर आ जायेगा। मैं दाढ़ी बनाकर, सूटकेस सजाकर बैठा था, पर ज्योतिप का कोई पता नहीं था। ज्योतिप

गवर्नमेन्ट फ्लैट में एक कमरा लेकर रहता है। उसके यहां फोन भी है। मैंने उसे फोन किया पर फोन बजता ही रहा। इसका मतलब, वह घर में नहीं है। ट्रेन का समय हो गया। फिर भी वह नहीं आया। एक बार फिर फोन किया, तब भी फोन बजता ही रहा। जरूर घर पर नहीं है। दोनों टिकट मेरे ही पास थीं। एक टैक्सी बुलवाकर मैं अकेला ही स्टेशन चला गया। सोचा, शायद वह स्टेशन पर ही मेरा इन्तजार कर रहा हो। लेकिन नहीं। वह स्टेशन पर भी नहीं था। कहीं ट्रेन ही न छूट जाय। दो बार समूचे स्टेशन के चक्कर लगाये, अच्छी तरह खोजा, पर नहीं मिला। चाहता तो मैं अकेला ही कश्मीर जा सकता था पर उसको छोड़कर जाना क्या उचित था? मैं नहीं गया। स्टेशन से ही उसके फ्लैट पर पहुंचा। देखा, उसके कमरे में ताला लगा हुआ था। कहां गया, यह कोई नहीं बता सका। कलकत्ता शहर में कोई किसी की खबर नहीं रखता। यहां तक कि बगल के कमरे में रहनेवाला भी नहीं।

मैं भी एक गवर्नमेन्ट फ्लैट में ही एक कमरा लेकर रहता हूं। मेरे पास भी फोन है। घर आकर फिर एक बार ज्योतिष को फोन करता हूं। पर फोन बजता ही रहा लगातार। ज्योतिष घर में नहीं है। मामला क्या है?

□

मैं हड़बड़ाकर बिस्तर पर उठ बैठता हूं। खा-पीकर मैं सो गया था। मेरा फोन बज रहा है।

'हैलो, कौन?'

'मैं, ज्योतिष।'

'अरे तुम, यार मामला क्या है?'

'भई, मैं तो चला आया हूं यहां.....'

'कहां? कश्मीर? प्लेन से? मुझे छोड़कर चला गया? बहुत ताज्जुब की बात है!'

'तुम्हें लाना संभव नहीं था। बड़ा अद्भुत है यह देश!'

'बहुत ही खूबसूरत सीनरी है न? कश्मीर तो पृथ्वी का स्वर्ग है। सीनरी तो अच्छी होगी ही। लेकिन मुझे छोड़कर चला गया तू!'

'नहीं। मैं सीनरी नहीं देख रहा हूं। यह एक अद्भुत देश है।

पहल यहां आया तब देखा कि चारों तरफ निर्जन और उजाड़ है। कहीं कोई नहीं है। विराट देश, विराट आकाश, विराट मैदान, विराट दिगन्त लेकिन कहीं कोई नहीं है। मैं पैदल चलने लगा। थोड़ी दूर पैदल चलने पर देखता हूं कि लोगों का एक झुंड मेरी तरफ दौड़ा आ रहा है। मैं डर गया लेकिन भाग नहीं सका। चारों तरफ खुली जगह थी। छिपने का कोई स्थान नजर नहीं आया। वे लोग मेरे पास आकर पूछने लगे, 'आप बंगाली हैं ?' मैंने कहा, 'हां।' उन्होंने कहा, 'तब आइये हमारे साथ। हमलोग मुक्तिवाहिनी के लोग हैं। पाकिस्तानी फौज को मार भगायेंगे। वे लोग यहां भी पहुंच गये हैं पर यहां भी उन्हें टिकने नहीं देंगे। यहां से भी मार भगायेंगे उनको। आप आइये हमारे साथ।' उनमें से किसी के हाथ में दाब, किसी के कुदाल, किसी के बन्दूक, किसी के तलवार, किसी के लाठी आदि हथियार थे। किसी के हाथ में कुछ भी नहीं था। जिनके हाथ में कुछ भी नहीं था वे कह रहे थे, 'हमारे पास हमारे दांत हैं, नाखून हैं, मन की ताकत है, हाथों के मुक्के हैं तथा लातों की मार है। आप भी चलिये हमारे साथ। चलिये, चलिये। और देर करने का समय नहीं है।'

मुझे वे हाथ पकड़कर खींचने लगे। आखिर मैं भी उनके दल के साथ हो लिया। उनके साथ दौड़ने लगा। दौड़ते-दौड़ते ही मैंने पूछा, 'कितनी दूर है पाक सेना ? हम कहां जा रहे हैं ?' उन्होंने कहा, 'जा रहे हैं हमारे नेता के पास। वे ही हमें बतायेंगे कि कहां, किस तरह आक्रमण करना है।' थोड़ी दूर और जाने पर एक ज्योतिर्मय-लोक में पहुंच गये। चारों तरफ रोशनी-ही-रोशनी। सबसे पहले मुझे नजर आया एक बहुत ही बलिष्ठ व्यक्ति जो घोड़े पर बैठा हमलोगों की तरफ ही देख रहा था।

उन्होंने कहा, 'वह देखिये, हमारा शेर यतिन। उसके पीछे खुदीराम। उसकी बांयी तरफ सूर्य सेन। उसके सामने विनय। उस टीले पर खड़ा है दिनेश। इधर बादल। बारिन दा भी खड़े हैं बांयी तरफ। वो देखिये बहुत दूर श्री अरविन्द हैं। पुलिन दास है, उसके पास कन्हाई है। उसके पास—'

मैंने कहा, 'पर भई, वे तो सब मर चुके हैं !'

'मैं भी मर चुका हूं और मेरी मृत देह यादवपुर की एक नाली में पड़ी है।'

'तुम किस तरह मरे ?'

'पाइपगन की गोली से।'

'किसने मारा तुम्हें ?'

'किसने मारा यह जानता हूं पर उसका नाम नहीं बताऊंगा। वह मेरा दोस्त है। अपनी भूल वह खुद ही बाद में महसूस करेगा। मैं—'

उसका गला भर आया।

अचानक उधर से फोन की लाइन कट गयी।

'हैलो, हैलो !'

पर कोई जवाब नहीं मिला।

■ ■ ■

गणतांत्रिक

गजेन्द्रकुमार मित्र

० ० ० ० ०

नहीं, खाने-पीने का तो आजकल कोई सवला ही नहीं उठता। वो दिन गये। विमल के पिता बताया करते हैं कि पहले के दिनों में म्युनिसिपैलिटी के इलेक्शन आते ही लड़कों के चाय-नाश्तों से उनकी मां-मौसियों को छुटकारा मिल जाता था। एक महीने से भी अधिक, कभी-कभी तो दो-तीन महीने

वोट लेने के दिन का तो कहना ही क्या ? प्रत्येक बूथ के आस-पास उम्मीद-वारों के कैम्प लगते। वहां टोकरी-के-टोकरे पूड़ी तथा बुंदिया और गमले भर-भरकर आलू की सब्जी रात से ही आनी शुरु हो जाती थी। कौन-कौन खा रहे हैं, कितना खा रहे हैं, कौन-से प्रार्थी के वालंटियर किसके कैंप में खा रहे हैं, जो लोग खा रहे हैं वे सभी वालंटियर ही हैं कि नहीं, यह सब देखने की किसी को फुरसत नहीं होती थी।

अब सब कुछ बदल गया है।

आज-कल तो चाय और बिस्कुट ही इष्ट-देवता हो रहे हैं। जो भी मिल जाय, उसी से काम चलाना पड़ता है। बहुत बार तो बिस्कुट भी अच्छी कम्पनी के नहीं होते। 'विशुद्ध ब्राह्मण की दुकान' के बिस्कुट तो कभी-कभी ही नसीब हो पाते हैं। जो दो-एक बहुत विश्वस्त वालंटियर होते हैं उनको चुपचाप घर ले जाकर खिलाया जाता है अब तो। यहां तक कि खास इलेक्शन के दिन भी (आजकल तो धर-पकड़ होती है, मतलब दो दिन पहले से ही कनवासिंग बन्द करनी पड़ती है। बूथ से एक सौ गज की दूरी तक उम्मीदवारों को कैंप लगाने की भी मनाही है) पहले की तरह तली हुई पूड़िया और मास की बात तो दूर, आलू की सब्जी तक का इन्तजाम नहीं होता। कूपन दे दिया जाता है जिससे कि मोहल्ले की चाय-दुकान में जाकर सिर्फ चाय और टोस्ट ले सकते हैं।

अब तो निर्वाचन का अधिकतर काम पार्टी के हाथ में होता है। पार्टी के वालंटियर ही मेहनत करते हैं, वे संख्या में भी बहुत होते हैं, अत उन सभी को खिलाना-पिलाना संभव नहीं होता।

नहीं, अब वह आकर्षण तथा लालच नहीं रहा। निर्वाचन के बाद जीतने पर अवश्य ही कोई-कोई उम्मीदवार अपने खर्च से कुछ खास घनिष्ट व्यक्तियों को खिलाते हैं लेकिन किसी-किसी पार्टी के विधान में तो वह भी निषिद्ध होता है। विमल के ताऊ कहा करते हैं, नौबतखाने में तूती की आवाज की कहावत सुनी है न ? आज-कल किसी भी उम्मीदवार के लिये काम करना वैसा ही है। सारी-सारी रात जागकर दीवारों पर लिखना और पोस्टर चिपकाना, हर शाम को जुलूस निकालना, गला फाड़कर नारे लगाना, फिर उन नारों का अनुसरण करना, और वापस कैंप में लौटने पर मिलते हैं सिर्फ चाय-बिस्कुट

या फिर चाय-टोस्ट। पूड़ी, आलू की सब्जी और बुन्दिया तो एकदम स्वप्न की सी बात लगती है।

विमल इस घर का खाकर उस घर की रखवाली करनेवालों में से नहीं है। किसी एक पार्टी के नाम के साथ जुड़ना भी पसन्द नहीं है। वह चाहता है—चाहे इसके लिए कितने भी प्रयत्न क्यों न करने पड़ें—उन सभी को कुछ-न-कुछ ओब्लाइज्ड करके रखे। यानी उन तीनों ही मुख्य प्रार्थियों को जिनको हिन्दी में 'उम्मीदवार' कहा जाता है।

यह काम उतना सहज नहीं है, यह वह अच्छी तरह जानता है। और यही कारण है कि इसमें उसे इतना उत्साह महसूस होता है। दोपहर को प्रदीप सरकार के घर जाकर बोल आयेगा, 'नहीं माटू दा। मैं आपके जुलूस में नारे लगाने के लिये नहीं जाऊंगा। चाहे आप नाराज हों या मुझ पर गुस्सा हो करो। क्योंकि मुझे लगता है, अलग रहकर मैं उससे बहुत बड़ा तथा बहुत महत्वपूर्ण कुछ कर सकूंगा। मैं निर्मल माइति के कैंप में बराबर आता-जाता रहता हूं। वे जानते हैं कि मैं उनका खास सपोर्टर हूं, अतः दिल खोलकर मुझसे सारी बातें करते हैं। वे सब बातें, यानी इलेक्शन के लिये उनकी क्या टैक्टिक्स हैं, बीच-बीच में अगर आपको बताता रहा तो उसी में आपका अधिक लाभ होगा।' लेकिन प्रदीप सरकार भी घाघ प्रकृति का व्यक्ति था। उन्होंने भौंहों में बल डालकर कहा, 'तभी हमारे कैम्प में आते-जाते हो और हमारी बात उन्हें बताते हो जाकर! कौन-सी बात सच है?' विमल जरा-सा भी विचलित नहीं हुआ। साहित्यिक भाषा में अगर कहा जाय तो उसके चेहरे की रेखाओं में तिल भर भी कम्पन नहीं दिखा। हंसकर ही जवाब दिया उसने, 'अच्छी बात है। अगर आपको यही शक है, तो एक बार परीक्षा लेकर देख लीजिये। यह काम और किसी के लिये मुश्किल हो सकता है, लेकिन आपके लिये नहीं। और मेरे क्या दो सिर हैं जो आपके साथ ऐसी बेईमानी करूंगा? ऐसा करने का परिणाम क्या मैं नहीं जानता? या चारों ओर की घटनाओं से मैं अनभिज्ञ हूं?'

प्रदीप सरकार आश्वस्त हो जाते हैं, तथा सस्नेह विमल की पीठ थपथपाते हैं। निर्मल माइति भी आश्वस्त हो जाते हैं।

निर्मल से वह कहता, 'मैं आपके पास आकर आपका काम नहीं कर रहा इससे बुरा न मानियेगा, हाबू दा। यह न सोच बैठना कि मैं उस दल का आदमी हूं।

प्रकट रूप से यहा काम करने पर वे लोग सतर्क हो जायेंगे । फिर तो मुझे उनकी एक भी खबर हाथ नही लगेगी । अभी तो वे मुझसे दिल खोलकर बात करते हैं । कोई खास खबर मिलते ही यानी इस चुनाव में उनकी क्या-क्या ट्रिक्स हैं इसका पता लगते ही आपको बता दूंगा । इसी मे आपका अधिक हित होगा ।'

तब निर्मल माइति ने उसे चमगादड़ की कहानी सुनायी थी । वह इस प्रकार थी, 'एक बार पृथ्वी के सभी पशुओं एव पक्षियों मे युद्ध छिड़ गया । बहुत जोर की लड़ाई छिड गई थी परस्पर । दोनों दल मे से बहुत हताहत हुए । लेकिन चमगादड ने अपनी सुरक्षा का अच्छा उपाय ढूढ निकाला था । एक तरफ तो उसके पख हैं, वह आकाश मे उड़ता है, इसलिए पक्षी है; दूसरी तरफ वह स्तनपायी जीव है तथा अण्डे भी नही देता, अत. वह पशु है। दर-असल वह पशु है या पक्षी, यह समझना मुश्किल है । इसी समस्या और बेनिफिट ऑफ डाउट के सुअवसर का लाभ उठाया चमगादड़ ने । जब पक्षी हारते तब वह पशुओं के पास जाकर कहता, 'मैं तो तुम्हारे ही दल का एक सदस्य हूं । मैं पक्षी थोडे ही हू । हा, पख हैं मेरे लेकिन जुडे हुए हैं । अन्य पक्षियों जैसे नही हैं । और फिर हम तो मा का दूध पीकर बडे होते हैं । अत. हमारे पशु होने मे तो दो मत हो ही नही सकते ।' और जब देखता कि पशुओं की हालत पतली हो रही है तब सीधा पक्षियों के पास पहुचकर कहता, 'भई, हम आकाश में उड़ते हैं, पेड़ पर वास करते हैं । जन्तु नाम का हमारा कोई सबधी भी हो, ऐसा सुना है क्या आपने कभी ?' इसी तरह दोनों दलों को धोखा देकर खुद का बचाव कर रहा था वह, लेकिन एक दिन जब दोनो का झगडा खत्म हो गया, आपस मे सन्धि हो गई तब दोनों दलो ने ही चमगादड का बहिष्कार कर दिया । उसकी चालाकी को दोनों पक्षो ने पकड लिया था । अब वह जमीन पर उतरता तो पशु नाखून और दातो से उस पर आक्रमण करने और आकाश में उड़ने पर पक्षी चोंच मारते । इसीलिये चमगादड़ दिन मे किसी उजाड़, सूने खंडहर मे दुबका रहता है । दिन मे वह बाहर नही निकलता । रात को सब के सो जाने के बाद चुपके से बाहर निकलता है और मनुष्य के बाग मे फल-फूल चोरी करके खाता है ।'

यह कहानी सुनने के बाद भी विमल के चेहरे की एक रेखा तक नही कापती है । वह उसी तरह हसकर कहता है, 'ठीक ही तो है, आपलोगो के हाथों यह

परिणाम तो निश्चित हो ही गया है, हाबू दा। नाखून और दांत की क्या बात है, उनसे फिर भी बचा जा सकता है, आपलोगों के पास तो पाइपगन, पिस्तौल, छूरा आदि भी मौजूद हैं। चमगादड़ को दंड देने में देर ही कितनी लगेगी ?'

इसके बाद निर्मल माइति के लिए उससे हैण्ड-शेक करने के अलावा कोई चारा ही नहीं था।

इन सब में तृतीय उम्मीदवार ही कुछ दुर्बल था। वह था हरीश भण्डारी। दुर्बल का मतलब अहिंसक दल का उम्मीदवार। उनके न नाखून तेज हैं न दांत, यहां तक कि वे अपनी आंखें भी बन्द ही रखते हैं। फिर भी बैलेट-बॉक्स का रहस्य कौन समझ पाया है ? यही सोचकर विमल उसे भी कभी-कभार चुपके से मोहल्ले की गतिविधि से वाकिफ करा आता; और दे आता था कुछ उपदेश।

हरीश बाबू के जीतने की उम्मीद सौ में से दस प्रतिशत ही थी, फिर भी अगर बिल्ली के भाग से ही छींका टूटे तो जितनी-सी बेगार कर रहा है उसके बदले भी बहुत-कुछ दावा कर सकता है। हां, नहीं जीता तो कोई बात ही नही।

विमल का अधिक आना-जाना उन्हीं दोनों यानी प्रदीप सरकार और निर्मल माइति के कैंप में ही था। इसके अलावा, यही दोनों परस्पर समान प्रतिपक्षी थे। इसलिए विमल सचमुच ही प्रदीप की कुछ-कुछ गुप्त योजना निर्मल को और निर्मल की गुप्त चाल प्रदीप सरकार को बताने लगा। इससे दोनों की ही आस्था और विश्वास उस पर बढ़ा इसमें शक नहीं, पर दोनों ही सतर्क भी हो उठे थे अपनी-अपनी गुप्त योजना के प्रति। उनकी कुछ बातें आउट हो जाने से उन्हें शक होने लगा कि उनके दल का कोई ऐसा व्यक्ति है जो उनके साथ सांघातिक रूप में विश्वासघात कर रहा है। वह कौन हो सकता है ? किसकी हिम्मत है इतनी ? दोनों दलों के सामने प्रधान समस्या यही थी। एक बार पता लग जाय तो फिर उसका उचित इन्तजाम कर देंगे वे। विश्वासघाती को किस तरह की सजा देनी चाहिये यह वे अच्छी तरह ही जानते हैं।

विमल भी इतना लापरवाह नहीं था उस ओर से। यह आग से खेलना था। बल्कि आग से भी भयानक था यह खतरा। आग से जलकर फिर भी कोई-

कोई बच जाता है। यह खेल तो काले विषधर से खेलने के समान था। वह भी बहुत फूंक-फूंककर कदम रख रहा था। जो मंत्रणा बहुत ही सीमित विश्वासी व्यक्तियों के सामने होती उसे वह कभी किसी के सामने प्रकट नहीं करता, क्योंकि ज्यादा लोग सन्देह की परिधि में हों तो स्वयं बहुत-कुछ निरापद रहा जा सकता है, पर संकीर्ण घेरे में फसने से ही मुसीबत आ जाती है।

साहसिकता के खेल में भी एक अद्भुत नशा होता है। जो सपेरे काले एवं गोखरे सांप को लेकर खेल करते हैं उन्हें कोई अन्य सुविधाजनक निरापद जीविका मिलने पर भी वे उसे स्वीकार करेंगे कि नहीं, इसमें सन्देह ही है। लेकिन इस नशे की झोंक में जब मनुष्य अंधा हो जाता है तो उसका सारा हिसाब बराबर हो जाता है। नहीं तो कुमुद चौधरी जैसा पक्का शिकारी पचास के करीब बाघों का शिकार करने के बाद ऐसी सांघातिक भूल क्यों करता? वह खुद ही कितने लोगों से कहा करता था कि घायल बाघ का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। मर गया है कि नहीं, इस बात का पूरी तरह विश्वास किये बगैर उसके पास कभी नहीं जाना चाहिये। और खुद वही घायल बाघ के पास जाकर अपने प्राण दे बैठा।

सभी मामलों में ऐसा ही होता है। जैसे रेस का पक्का खिलाड़ी दूसरों को सही घोड़ा बताकर भी खुद गलत घोड़े पर दाव लगाकर सर्वस्व हार बैठता है।

विमल भी आखिर खुद को सम्हाल नहीं सका। प्रदीप सरकार के दल ने तय किया था कि जो जाली वोट डालेंगे वे बांये हाथ की तर्जनी में वैसलिन या बोरोलिन लगाकर जायेंगे जिससे स्थायी निशान रूमाल से पोंछते ही अस्थायी हो जाय। जब यह मंत्रणा तय हुई तब प्रदीप सरकार के अलावा वहां पांच व्यक्ति और मौजूद थे। एक प्रदीप सरकार का लड़का अम्बू, एक उनका बड़ा साला, एक उनकी पार्टी का सेक्रेटरी, चौथा प्रदीप बाबू का बहुत ही विश्वसनीय और दाहिने हाथ जैसा प्रधान सहायक अभय, और पांचवा विमल।

अतएव यह संवाद जब निर्मल माइति के कैम्प में घूम-फिरकर वापस प्रदीप सरकार के कैंप में पहुंचा तब उन लोगों की भृकुटी का तन जाना स्वाभाविक ही था। लेकिन उनलोगों ने न तो यह बात ही फैलने दी कि इस विषय में वे

कुछ जानते हैं और न उत्तेजना ही जाहिर की। वे तो स्तब्ध एवं स्तंभित-से हो गये थे। सभी के मन में एक कुटिल संदेह एवं उत्तेजना फैल गई थी।

अगर उस समय भी वह सम्हल जाता तो अच्छा रहता पर विमल यहीं पर चूक गया।

उनकी उस स्तब्धता को विमल ने अनभिज्ञता समझ लिया। उसने समझा कि इन लोगों को कुछ भी पता नहीं चला है, अतः शक होने की कोई गुंजाइश नहीं है। फिर से निःशंक हो उसने दोनों के ऑफिस में आना-जाना शुरू कर दिया। हां, प्रकट में नहीं आता-जाता था, उसी तरह अन्तरंगता से चुपचाप जाता था। उसने मन-ही-मन अपनी इस चतुराई की तारीफ भी की।

पर इसी बीच उधर निर्मल माइति का दल भी सतर्क हो उठा। विमल द्वारा दी हुई गुप्त खबर से उनको बहुत ही लाभ पहुंचा था लेकिन साथ ही वे विमल की ओर से शंकित भी हो उठे थे। जो उनका इतना अंतरंग होकर भी (अगर अंतरंग नहीं होता तो यह सब बातें उसे क्यों बतायी जातीं!) उनके साथ इतना विश्वासघात कर सकता है उस पर किसी को भी विश्वास नहीं करना चाहिये।

इसीलिये माइति-दल की चाल एवं योजना के बारे में वह कुछ भी नहीं जान सका। निर्मल माइति ने एक ऐसी योजना बनाई थी जिसकी प्रदीप-दल के लोग कल्पना भी नहीं कर सकते थे। बहुत ही जबर्दस्त योजना थी।

और उसका पता चला ठीक वोट डालने के वक्त।

वह उस दिन किसी बूथ के नजदीक भी नहीं फटका। खुद वोट डालने भी नहीं गया। जो कुछ उसने सुना, बस लोगों के मुंह से ही सुना। जितने मुंह उतनी बातें हो रही थीं। फिर भी एक बात साफ थी कि उन्होंने डर दिखाकर ही बाजी मात की थी। किसी ने कहा, रिवाल्वर दिखाकर पोलिंग ऑफिसरों से बैलट पेपर छीन लिये और अपनी इच्छानुसार वोट दे दिये। किसी ने कहा, जाली बैलट पेपर छपवाकर लाये थे। किसी से सुना कि बैलट बॉक्स ही अदल-बदल कर दिये। सबसे मजेदार जो बात विमल ने सुनी वह यह थी कि माइति-दल के गुप्त गुण्डे, क्यू लगाये खड़े वोटरों के कानों में चुपचाप बोल गये थे, 'तुमलोगों की गर्दन पर एक सिर भी मौजूद है, लेकिन उस सिर को अगर सही-सलामत रखना चाहते हो, तो अच्छी तरह सोच-समझ कर ही वोट

देना।' आदि-आदि।

हो सकता है, यह सब अफवाह ही हो। जिसका जैसा जी चाहा, उसने वैसी बात उड़ा दी। लेकिन फिर भी यह निश्चित था कि उन्होंने कोई जबर्दस्त चाल अवश्य चली है। पर क्या चाल थी निर्मल माइति की, इसे विमल नहीं पकड़ सका। जानने का मौका ही नहीं मिला, इसी का अफसोस था विमल को।

मौका नहीं मिला इसीलिये रातों-रात घर-गाव छोड़कर उसको भागना पड़ा।

वोटरों की गति देखकर, या फिर बूथ के भीतर मौजूद अपने आदमियों के मुंह से विवरण सुनकर, प्रदीप सरकार अपनी भाग्यलिपि साफ पढ़ सकता था। इसीलिये ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता जा रहा था, ज्यों-ज्यों सूर्य अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रहा था, वोट डालने का समय ज्यों-ज्यों समाप्ति की ओर पहुंच रहा था, त्यों-त्यों ही उनके दल की मुख-मुद्रा काली एवं क्रूर होती जा रही थी। चेहरे पर भयानक कठोरता लिए वे लोग सरगर्मी से विमल को ढूंढ़ने लगे।

इस पराजय का एकमात्र अपराधी वे विमल को ही ठहरा रहे थे। उनकी धारणा थी कि विमल सब बातें जानता था। उनकी गुप्त योजना उसने निर्मल माइति को बता दी, लेकिन निर्मल माइति की एक भी बात उन्हें नहीं बतायी।

माइति के दल पर उन लोगों को उतना क्रोध नहीं था। होने का कोई कारण भी नहीं था क्योंकि सभी अपना स्वार्थ देखते हैं और यह स्वाभाविक भी है, लेकिन विश्वासघातकता दूसरी बात है। विमल अवश्य ही माइति-दल का स्पाई था। प्रदीप का मित्र एवं विश्वासपात्र बनकर उसने गुप्त खबरें संग्रह कीं और उधर चालान कर दीं। उधर की दो-एक फालतू खबरें जरूर ले आया था, लेकिन मुख्य योजना की कोई आंच नहीं आने दी।

ऐसे अपराध की क्षमा नहीं मिलती। इतना बड़ा विश्वासघात! स्पाई सभी देशों में, सभी तरह की राजनीति में घृणित समझे जाते हैं; और सभी देशों में इनके लिए दंड भी एक-सा है, यानी मृत्यु। इसके अलावा, मानवता की दृष्टि से भी ऐसे खतरनाक आदमी का जिन्दा रहना ठीक नहीं। पता नहीं

ासका सत्यानाश कर बैठे ।

र —

इस अवसर की प्रतीक्षा में बैठा नहीं रहा विमल । जो करके पहले था
ी में घर से भाग गया । सिर्फ घर से नहीं, बांगला देश से ही भागना
ड़ा था उसे । वह जानता था कि इस देश में कहीं भी रहने पर ये लोग
कसी-न-किसी दिन उसे ढूंढ़ ही निकालेंगे ।

रातों-रात टैक्सी करके बंगाल आया और उसी रात को एक्सप्रेस पकड़ सीधा
राउरकेला, अपने बड़े भाई की ससुराल, जा पहुंचा । हालत उसकी शोचनीय
हो रही थी ।

कलकत्ता में भी बेकार ही था, फिर भी ट्यूशन करके गुद का खर्च किसी
प्रकार चला लेता था । पर यहां बिल्कुल असहाय एवं खाली जेब था । इस
हालत में रिश्तेदारों के यहां जाने पर शर्म की कोई सीमा नहीं रहती लेकिन
और उपाय भी क्या था ? बंगाल से बाहर और कोई अपना था भी तो नहीं ।
लाज-शर्म की परवाह न करके ट्यूशन ढूंढ़ने के अलावा उसे और कोई उपाय
नहीं सूझा । आत्म-सम्मान को बचाने के लिये झूठी कहानी गढ़ने में उसे कोई
असुविधा नहीं हुई, क्योंकि कलकत्ता की बिगड़ी हुई स्थिति और रात-दिन
होनेवाली दुर्घटनाओं के बारे में सभी को पता था । अतः इस तरह भाग आने
का एक झूठा इतिहास कायम करने में उसे जरा भी देर नहीं लगी ।

ीनता स्वीकार करने के बावजूद यहां आने के बाद से वह थोड़ी निश्चिंतता
ी महसूस करने लगा ।

लेकिन एक बात विमल ने नहीं सोची थी कि, इस पराजय की ग्लानि की
कैसा भयंकर रूप धारण कर सकती है ! प्रतिशोध की भावना कितना
रूप धारण कर सकती है !

वह समझा दस-बारह दिन बाद ।

अखबार के मार्फत पता लगा उसे ।

विमल का छोटा भाई अमल बी० ए० में पढ़ता था । बेचारा बहुत
लड़का था । रात-दिन अध्ययन में ही व्यस्त रहता था और उसकी
अभिलाषा भी बस परीक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त करना ही थी ।
में उसकी कोई रुचि नहीं थी ।

विमल को न पाने के क्षोभवश प्रदीप सरकार ने [illegible] बदला लिया है। पता नहीं, किन लोगों ने उसका खून कर उसे तालाब किनारे फेंक दिया था।

और भी खबर मिली। ऐसी खबरें ठीक-ठीक पहुंच भी जाती हैं। इस [illegible] को अपना अपमान समझकर, निर्मल [illegible] के दल ने प्रदीप को [illegible] व्यक्ति घोषित कर दिया है, और उसके नाम को [illegible] से [illegible] मोहल्ले में जुलूस घुमाया है तथा बदला लेने के लिये प्रदीप के [illegible] धमका रहे हैं।

बेचारा मंगल! कितना भला और अच्छा लड़का! बहुत ही अच्छा लड़का था मंगल।

इस हत्या का कोई प्रतिकार भी नहीं किया जा सकता, यह विमल अच्छी तरह जानता है। साक्षात् देखने के बावजूद कोई नहीं आयेगा। कोई गवाही नहीं देगा। कोई पकड़ा नहीं जायेगा।

लेकिन अगर प्रतिकार किया भी गया तो उससे फायदा क्या होगा?

मान लो, प्रदीप के दल के किसी आदमी को निर्मल [illegible] के लोग 'खत्म' कर देते हैं तो प्रदीप दुबारा उनसे बदला लेने की कोशिश करेगा। [illegible] में ही सब है कि विमल [illegible]-दल का आदमी है। [illegible] जोड़ने से यह और भी प्रमाणित हो जायेगा।

विमल क्रमशः अपने बड़े भाई और पिता के बारे में सोचता है। [illegible] के भविष्य के बारे में सोचता है।......

कहीं इनमें से भी कोई उनकी चोट में न आ जाए।

तो क्या यह चोट [illegible]?

विमल [illegible] है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

■ ■ ■

सर

दिव्येन्दु पालित

० ० ० ०

रमन कमरे में घुसते ही बोला, 'सर, मैं बहुत ही मुसीबत में फंस गया हूं। आप मुझे बचा लीजिये।'

मैं घबरा गया। रमन के इस तरह अचानक चैम्बर में आ घुसने से नहीं, उसके बात करने तथा खड़े होने के ढंग से। टेबिल के उस ओर पास-पास तीन कुर्सियां रखी थीं। चैम्बर में घुसकर बात कहने से पहले उसने एक चेयर को कसकर पकड़ लिया था और अब चेयर के सहारे वह इस तरह खड़ा था कि चेयर की पीठ उसके पेट में धंसी जा रही थी। कुर्सियों के पायों में शब्द-निरोधक कुशन लगाये हुए थे, नहीं तो इसी क्षण एक विकट शब्द होता।

लेकिन इन सब बातों को लेकर रमन जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसकी आंखें विभ्रांत-सी हो रही थीं। नजरें इस कदर स्थिर थीं कि वह मेरे सिवाय और कुछ नहीं देख रहा था। ऐसे अवसरों पर जैसी होनी चाहिये, ठीक वैसी ही अभिव्यक्ति व्यक्त कर रहा था वह। इस वक्त वह मंजा हुआ अभिनेता

लग रहा था।

उसको साधारण मनःस्थिति में लौटने में थोड़ा समय लगा। रमन अभिनय कर रहा हो, ऐसी बात नहीं थी। ऑफिस में मैं उसका बॉस था तथा वह मेरा सबोर्डिनेट, इस लिहाज से यह निश्चित था कि रमन वैसेके मुझसे मजाक करने नहीं आया था। मैंने घबराकर पूछा, 'क्या हुआ ? तुम खड़े क्यों रहे हो ? बैठो !'

'सर, मैं बहुत मुसीबत में पड़ गया हूं।' कहते-कहते अचानक रमन चुप हो गया। एक साथ ही ढेर सारी बातें जुबान पर आ जाने से जिस तरह आगे-पीछे कहने की सभी बातें गड्ड-मड्ड हो जाती हैं, उसी तरह रमन भी दुविधा में पड़ गया। अपनी बातें कहना भूल गया, मानो जुबान तालू से चिपक गई हो। फिर किसी प्रकार कोशिश कर बोला, 'सर, मेरी पत्नी बाथ-रूम में गिर पड़ी है। वह सात महीने से एडवान्स स्टेज में थी, बहुत ब्लीडिंग हो रही है, सर। मैं घर कैसे जाऊं ? मिलिट्री ने मोहल्ला घेर रखा है। हड़ताल चल रही है। कोई भी टैक्सी जाने को तैयार नहीं। बसें भी बन्द हैं।'

रमन और भी बहुत कुछ कहना चाहता था, पर कुछ न कहकर हठात् वह मेरी टेबिल की ओर खिसक आया। उसके रंग-ढंग देखकर लगा कि अब वह मेरे पैर पकड़ेगा। मैं फुर्ती से उठ खड़ा हुआ और उसका हाथ पकड़ लिया। 'रमन, होश में आओ। बोलो, मैं तुम्हारी किस तरह मदद कर सकता हूं ? तुम अभी तक ऑफिस में क्यों बैठे हो ? एम्बुलेन्स को खबर करते तो अच्छा रहता। पैदल जाते तब भी अब तक पहुंच सकते थे। अच्छा, तुम्हारा घर कहां है ?'

'बारानगर।'

अचानक दीवार से पीठ सटाकर रमन कुछ सयत हुआ, मानो उसने खुद को सम्हाल लिया हो। सम्भवतः इतनी देर बाद अब उसको ख्याल आया हो कि मेरे साथ उसका क्या सम्बन्ध है और उस कारण वह जितना नत हुआ है उससे और ज्यादा नहीं हो सकता। शायद मेरे उपदेशों ने भी उसे कुछ निराश कर डाला था। गलती मेरी ही थी। यह मैं कैसे कह सकता हूं कि मैंने जो कुछ कहा, वैसा रमन ने नहीं सोचा या कोशिश नहीं की ? बहुत ही मुसीबत में पड़े बिना रमन मेरे पास नहीं आता। उसकी और मेरी श्रेणी

अलग-अलग है। कौन किसको कितना पसन्द करता है या नहीं करता,
यह मैं अच्छी तरह जानता हूं।

नहीं, इस तरह की बात कहना उचित नहीं था। हो सके तो इस वक्त उसकी मदद करनी चाहिये।

उसी वक्त मैंने अपने मन को स्थिर कर लिया। रमन मुझसे कैसी मदद चाहता है, यह समझने में मुझे मुश्किल नहीं हुई। घर पहुंचने की कोशिश व्यर्थ जाते देख शायद उसे खयाल आया हो कि मेरे पास एक गाड़ी भी है। मतलब कि मैं अपनी गाड़ी में उसको घर पहुंचा आऊं। जिद्दी एवं स्नॉब के रूप में मैं चाहे जितना भी वदनाम क्यों न होऊं, लेकिन निश्चित रूप से रमन अब भी मुझे इन्सान समझता है। पूरी तरह मामले पर गौर किया तो ठण्डे कमरे में भी मेरे माथे पर पसीना झलक आया। मैंने कहा, 'ठीक है, तुम नीचे जाकर खड़े होओ। मैं आ रहा हूं।'

रमन खुश हुआ या नहीं, यह मैं नहीं जान सका। वैसे भी मैं जानता था कि निराशा के अलावा इस वक्त उसके चेहरे पर और कोई भाव नहीं आयेगा। कमरे से निकलने के पहले उसकी ठण्डी नजरें मुझे छू गयीं।

ब्लीडिंग सुनकर ही मेरा शरीर कांप उठा था। सांस रुक-सी गई थी। सात महीने का भ्रूण गर्भ में लिये एक युवती बाथ-रूम में गिर गई है और उसके लिये कुछ किया नहीं जा रहा है, यह सब सोचने से ही बदन सिहर उठा। मेरी एक बुआ इसी तरह इसी हालत में बाथ-रूम में गिर पड़ी थी। हॉस्पिटल पहुंचते-पहुंचते उसकी मृत्यु हो गई थी। अकस्मात् ही वह घ याद आ जाने से मुझे जोर की झुरझुरी आ गई। रमन के कमरे में जाते ही मैंने ड्राअर में ताला लगाया और जैकेट कंधे पर डाल मैं उतर आया।

शाम हो गई थी। घिरते अंधेरे में रमन बिल्कुल स्तब्ध-सा, प्रेत-छ एम्बेसडर का सहारा लिये खड़ा था। इस वक्त वह अभिनेता-सा न रहा था। उसकी तरफ देखते-देखते ही मेरे भीतर से एक दीर्घ-देही निकल आया और उसने रमन के कंधे पर हाथ रखा। रमन के क तो घटना बहुत ही सीरियस लगी मुझे। एक-एक क्षण मूल्यवान रहा था। मेरी सहायता से अगर उसकी पत्नी स्वस्थ हो उठे तो

जीवन भर मेरे प्रति कृतज्ञ नहीं रहेगा ? यही सब सोचते-सोचते कार में बैठकर मैंने रमन के लिये पीछे का दरवाजा खोल दिया और कहा, 'आओ, गाड़ी में बैठो।'

रमन बिना कुछ बोले चुपचाप गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी स्टार्ट होने में देर कर रही थी। रमन उकताकर बोला, 'सर, इंजन तो ठीक है न ?'

मैंने कुछ नहीं कहा। वास्तव में इस चिन्ताजनक वातावरण में भी मुझे मन-ही-मन हंसी आ रही थी। जिन लोगों को कभी कार में बैठना नसीब नहीं होता, वे सभी रमन की भाषा में ही बातें करते हैं। स्टार्ट होने में देर हो रही है, अतः इंजन खराब है ! रमन ने भी शायद यही सोचा था। सीधे-सादे होते हैं उनके सिद्धांत। दरअसल उसका सोचना भी उचित था कि गाड़ी क्यों नहीं मनुष्य की तरह तत्पर होती ! यही तो समय है उसके लिए कुछ कर दिखाने का !

रमन पीछे बैठा था। मेरे हाथ स्टीयरिंग पर थे। भीड़-भरे रास्ते में जितनी तेज चला सकता था उतनी तेज गाड़ी चलाने लगा मैं। मैं समझ रहा था कि गाड़ी में बैठकर भी वह आश्वस्त नहीं हुआ है। वह एक बार बायीं ओर से दायीं ओर खिसका; उसके बाद वापस बायीं ओर सरक आया। साइड-ग्लास को थोड़ा-सा नीचा करके मैंने वापस ऊपर कर दिया। रमन बहुत ही नर्वस फील कर रहा था। पीछे की सीट पर रमन का सीन ऐसा था मानो अंधेरे में रमन कुद में खेल रहा है। अपना एक काल्पनिक प्रतिद्वन्द्वी खड़ा कर लड़ रहा है [illegible] सोच रहा है कि उसे जीतना ही पड़ेगा। पार्क स्ट्रीट के मोड़ पर [illegible] ही अचानक चौराहे की लाल बत्ती जल उठी। मैंने जोर का [illegible] रोकी। यह घटना बहुत स्वाभाविक ही थी, फिर भी रमन ने [illegible] भरा शब्द निकाल ही दिया। शायद मुझे ही धिक्कारा [illegible] की बत्ती को। उस छोटी-सी ध्वनि से ही मानो सारे [illegible] जाहिर हो गया था। बीमार पत्नी एवं खुद के [illegible] भी तीसरे के अस्तित्व तक को मानने को तैयार [illegible] मैं भी उसके दिमाग से ओझल हो गया था। [illegible] कहा, 'रमन, तुम निश्चित होकर बैठो। [illegible] पहुंचा देते हैं।'

अचानक रमन ने पूछा, 'सर, और कितनी देर [illegible]

'देखो।'

टाई की गांठ मैंने ढीली कर ली। शायद आज बहुत गरमी थी। या हो सकता है, शायद रमन की उत्तेजना मुझमें भी प्रवेश कर गई थी। थोड़ी देर बाद मैंने पूछा, 'अटेण्ड करनेवाले लोग तो होंगे न घर में?'

'मेरी बूढ़ी मां है। वह भला क्या केयर ले सकेगी! उसे तो ठीक से दीखता भी नहीं। बगल के मकानवालों ने मुझे फोन पर खबर दी और कहा कि डॉक्टर को बुलाना ठीक रहेगा; पर इस समय जैसी परिस्थिति है शहर की, उसमें भला डॉक्टर घर से क्यों निकलेगा?'

'रमन, इतना नर्वस होने की कोई बात नहीं है।'

फिर से चौराहे की लाल बत्ती जल उठी। ऐसे ही अवसर पर तो सावधानी बरतने की जरूरत होती है। इन सब कामों में साधारणतः मैं नियम-कायदे भंग नहीं करता। दो-एक मिनट में ऐसी कौन-सी देर होती है? लेकिन आज रमन के साथ होने की वजह से ही शायद समूचे शिष्टाचार ही मुझसे बगावत करने पर तुले थे। भीतर से एक अद्भुत प्रेरणा मिल रही थी आगे बढ़ने के लिये। उल्टे रास्ते से आती एक गाड़ी की नाक को लगभग छूता हुआ मैं द्रुत गति से रास्ता पर कर गया। रमन भी देख ले आज कि मैं भी कुछ कर सकता हूं। यों मैंने रमन की पत्नी को कभी देखा नहीं था, फिर भी इस समय मैंने अपने सामने उसका एक काल्पनिक चित्र बना लिया। पीड़ा से नीला पड़ा चेहरा लिये वह पति के लौट आने की प्रतीक्षा कर रही है। उसके और रमन के बीच में बाधास्वरूप खड़े हैं मिलिट्री, हड़ताल, अनिच्छुक टैक्सी, स्तब्ध बसें और एक पूरा निषिद्ध और शून्यप्रायः इलाका। मैं सोचने लगा, क्या अभी तक ब्लीडिंग बन्द नहीं हुई होगी? क्या अभी तक कोई डॉक्टर नहीं पहुंचा होगा? जिन्होंने फोन पर खबर दी थी क्या वे रमन की प्रतीक्षा में निश्चिंत बैठे होंगे? इस धरती पर इन्सानियत का क्या इतना अभाव हो सकता है कि किसी की असहायता और पीड़ा के प्रति मनुष्य इतना हृदयहीन एवं उदासीन हो जाय? अब मुझे ही देखो, बिना अपने किसी स्वार्थ के भी कितनी तत्परता से दौड़ा जा रहा हूं! इसी बात से पता लगता है कि मुझे कितनी चिन्ता है। मुझे तो लग रहा था कि एम्बेसडर में इंजन नहीं बल्कि मेरा हृदय ही धक्-धक् कर रहा है।

आज का दिन मानो रमन के लिये ही विशेष रूप से उदय हुआ था, या

मन से अधिक स्वार्थी और कोई नहीं लगा। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये ग उपयोग कर रहा है। अपनी बीमार पत्नी को बचाने के लिये वह ी जोखिम उठा सकता है, लेकिन मैं किस स्वार्थवश जा रहा हूं? रमन ? क्यों? सभी को पता है कि हमारी श्रेणी अलग-अलग है। ऑफिस मैं तथा रमन एक-दूसरे के दुश्मन ही हैं। तो क्या इन्सानियतवश? ? पता नहीं। शायद इन सभी से भिन्न भी कोई भाव-बिन्दु है जहां र रमन एक हो जाते हैं।

मैं कुछ अधिक ही दार्शनिक बन बैठा था। रमन ने मुझे जगा दिया।

अब बांयी ओर चलिये!'

कम कर मैंने अपने चारों तरफ देखने के बाद गाड़ी को बायी ओर ा। 'यहां इतना अंधेरा क्यों है? क्या हमेशा इसी तरह अंधेरा ा है?'

, भर। सड़क के बल्ब फोड़ डाले हैं।' कहकर रमन क्षण भर को चुप रहा,

आदि-आदि याद नहीं और भी क्या-क्या कह गया था मैं।

रमन ने सिर झुकाये सब सुन लिया। उसके बाद बोला, 'सर, आप लोग गाड़ियों में चढ़कर चलते हैं, आप लोग इसे नहीं समझ पायेंगे। हमारे उधर बस बन्द है। ट्रेन भी बन्द है। पैदल चलकर किसी तरह यहां पहुंचा हूं। आप शौक से कर सकते हैं मेरे विरुद्ध रिपोर्ट।'

उसकी अंतिम बात में कुछ कटुता का भाव था।

यह तो उद्दंडता है। काम नहीं हुआ इसके लिये जरा-सा भी अफसोस नहीं है। सिर्फ कारण दिखाता है। यह रोज का ही धंधा हो गया है। रमन नहीं तो और कोई, कोई-न-कोई, कहीं-न-कहीं अवश्य ही अटक जाता है और ठीक समय नहीं पहुंच पाता। खास बात यह है कि इसके लिये कोई भी अफसोस महसूस नहीं करता। मेरा सारा बदन गुस्से से कांपने लगा था। पेपरवेट को मुट्ठी में भींचकर मैंने उससे कहा था, 'ओ के, यू मूव आउट।'

रमन चला गया। उसके विरुद्ध कोई नोट लिखूं या नहीं, इसी उत्तेजना और उलझन में दिन भर मिजाज खराब रहा। और फिर उस दिन की घटना को ही लो! लेकिन शायद उस दिन इतना क्रोधित होना ठीक नहीं हुआ। धीरे-धीरे मेरी शिराओं की उत्तेजना शांत होती जा रही है। मन खराब रहनेवाला भाव खत्म होता जा रहा है। बल्कि इस समय तो लग रहा है कि अच्छा ही हुआ जो पार्टी नहीं हुई, तभी तो हताश-परेशान रमन को मैं ऑफिस में मिल गया। मैं उस वक्त बैठा यही तो सोच रहा था कि शाम किस तरह व्यतीत की जाये? आफ्टरऑल, यह काम सबसे ज्यादा जरूरी है। मेरी तत्परता पर ही आज एक युवती का जीवन और मृत्यु निर्भर है। अच्छा ही है, कल मीनाक्षी के पास बैठकर बात करने का एक विषय मिल गया।

उसी वक्त एक नई चिन्ता ने मुझे दुविधा में डाल दिया। रमन के अनुनय-विनय पर चला तो आया हूं, लेकिन मैंने यह क्यों नहीं सोचा कि यह समय बिना सोचे-समझे उपकारी की भूमिका निभाने का नहीं है। हड़ताल के ही कारण जब शोभन की मैरिज-एनिवर्सरी की पार्टी में नहीं गया तब फिर अब क्यों जा रहा हूं? रमन ने भी तो कहा था, 'हड़ताल चल रही है। उपद्रवियों और संदिग्ध अपराधियों की खोज हो रही है। सारे मोहल्ले को मिलिट्री ने घेर रखा है।' जिधर मैं जा रहा हूं, क्या उधर रिस्क कम है! इस क्षण

मुझे रमन से अधिक स्वार्थी और कोई नहीं लगा। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिये वह मेरा उपयोग कर रहा है। अपनी बीमार पत्नी को बचाने के लिये वह कोई भी जोखिम उठा सकता है, लेकिन मैं किस स्वार्थवश जा रहा हूं? रमन के लिये? क्यों? सभी को पता है कि हमारी श्रेणी अलग-अलग है। ऑफिस में तो मैं तथा रमन एक-दूसरे के दुश्मन ही हैं। तो क्या इन्सानियतवश? दयावश? पता नहीं। शायद इन सभी से भिन्न भी कोई भाव-बिन्दु है जहां मैं और रमन एक हो जाते हैं।

शायद मैं कुछ अधिक ही दार्शनिक बन बैठा था। रमन ने मुझे जगा दिया।

'सर, अब बांयी ओर चलिये!'

स्पीड कम कर मैंने अपने चारों तरफ देखने के बाद गाड़ी को बायीं ओर घुमाया। 'यहां इतना अंधेरा क्यों है? क्या हमेशा इसी तरह अंधेरा रहता है?'

'नहीं, सर। सड़क के बल्ब फोड़ डाले हैं।' कहकर रमन क्षण भर को चुप रहा, फिर बोला, 'हमारा मोहल्ला तो सर, और भी खराब है। वहां रोज दो-एक गदर तो होते ही हैं। पन्द्रह दिनों में यह तीसरी बार हुई है हड़ताल।'

यहां सड़क चौड़ी होकर दो तरफ को मुड़ गई थी। बहुत दूर-दूर पर लैम्प-पोस्टों से झूलती एकाध लाइट जल रही थी। किसी-किसी मकान की खिड़कियों से भी रोशनी छनकर बाहर आ रही थी। इस तरह के प्रकाश से तो अन्धेरे का अहसास और भी बढ़ जाता है। किस्मत अच्छी थी कि चान्दनी रात थी। उसी रोशनी में आगे बढ़ने की बात सोची मैंने। रमन मेरी गर्दन पर झुका आ रहा था। उसकी सांस मैं अपनी कनपटी पर स्पष्ट रूप से महसूस कर रहा था। मैंने महसूस किया कि बहुत देर चुप रहने के बाद वह फिर से अधीर हो रहा है। मैं वहां कोई आदमी ढूंढने की कोशिश में था पर कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ रहा था। रात के आठ बजे से ही ऐसी स्तब्धता! अचानक रमन ने कहा, 'सर, आपने मेरा बहुत उपकार किया है।'

'थैंक यू।' मैंने उद्विग्न स्वर में जवाब दिया। 'पहले घर पहुंच जाओ, वहां देखो क्या हालत है, तब यह सब बातें कहना।'

'हॉल्ट!'

यह आकस्मिक धमकी सुन मैंने शरीर की समस्त शक्ति से गाड़ी को ब्रेक

कर रोका। देखा कि सिर्फ दस गज की दूरी पर दो सैनिक राइफल ...
। रोशनी की कमी के कारण उनकी उपस्थिति का पता पहले नहीं लगा था।
मन नर्वस होते हुए बोला, 'लगता है, यहां भी वही हड़ताल और 'कूम्बिग' वाला मामला चल रहा है।'

'कोई और रास्ता नहीं है ?'

'मेन रोड को मैंने इसीलिये एवाइड किया था कि वहां भी कूम्बिग चल रहा है।..........'

सैनिकों में से एक जहां था वहीं खड़ा रहा तथा दूसरा आगे बढ़ आया।

'हट जाओ ! जल्दी........'

मेरे सिर से सिर्फ एक हाथ की दूरी पर राइफल का मुंह था। रमन गाड़ी में ही खड़े होने की मुद्रा में था। उसने जल्दी से कहा, 'भाई, बहुत जरूरी काम है।'

लेकिन फिर वैसा ही कर्कश जवाब मिला, 'हट जाओ !'

मेरी नजर राइफल पर ही टिकी हुई थी। क्या करूं, समझ में नहीं आ रहा था। हठात् रमन ने मेरा कंधा जोर से दबाकर कहा, 'सर, अंग्रेजी में बोलिये तो समझ जायेगा।'

उत्तेजना एवं भय के मारे मेरी समूची देह से पसीना छूट रहा था, तब भ... रमन की बात पर मुझे हंसी आ रही थी। मैंने कहा, 'कोई फायदा नहीं... कोई ऑफिसर वगैरह रहता तो उसको समझाया जा सकता था। अब... इसी में भलाई है कि गाड़ी बैक करूं।'

धीरे-धीरे गाड़ी बैक की। मेरी आंखें राइफल पर से क्षण भर को भी... हटीं। हमारी आंखों से उनके ओझल होने के साथ-साथ ही बम फ... जोरदार धमाका सुनाई पड़ा—एक बार, दो बार, और प्रायः उसीके सा... चारों ओर से आती सुनाई दी तीखी-तेज व्हीसल की आवाजें। हमारे ... एक भी आदमी दिखाई नहीं दे रहा था। अधिकांश घरों के खिड़कि... बन्द थे। रात के आठ बजे हैं या दो, यह भी समझ में नहीं आ रह...

'यह जगह सेफ नहीं है। हमारा यहां से निकल जाना ही उचित है...

'तब फिर ?'

'क्या और कोई रास्ता नही है ?'

रमन के मुंह से मानो बात नही निकल रही है। 'दाहिनी ओर से जाया जा सकता है, सर। उधर कोई ट्रबल नही है। जरा-सा आगे बढते ही बड़ा रास्ता है। हां, जरा चक्कर पड़ेगा।'

'ठीक है। तो फिर वहां तुम उतर जाओगे न ?'

रमन ने कोई जवाब नही दिया। पीछे मुड़कर देखता हू कि वह सीट पर अधलेटा-सा-पड़ा है और जल्दी-जल्दी सिर को हाथ से रगड़ रहा है।

'रमन, क्या हुआ ?'

'सर, कुछ समझ मे नहीं आता। अगर अस्पताल ले जाना पड़ेगा, तो........?'

तो मैं क्या कर सकता हूं ? अब मुझे सचमुच ही गुस्सा आ रहा था। दात-पर-दात भिच गये मेरे—सोचा, रमन, तुम हद से ज्यादा बढे जा रहे हो। अब तुम्हें स्वय ही अपना कोई इन्तजाम करना होगा। मैं मजबूर हूं। शायद मेरे करने लायक कुछ नही बचा है।

'सर !'

'ठीक है चलो, दाहिनी ओर चला जाय। उधर भी ट्राई कर लें।'

फिर मैं गाड़ी को घुमाया।

कही पास ही जबर्दस्त गोलमाल हो रहा है। कानो में कितनी ही तरह के अस्वाभाविक शब्द सुनाई पड रहे हैं। दाहिनी ओर जाते-जाते मैं और भी अधिक शकित हो उठा। किसी-किसी रास्ते के प्रत्येक कण मे अस्वाभाविकता भरी होती है—यहा भी ठीक वैसा ही लग रहा था मुझे। चारों ओर सन्नाटा, अधकार और हवा के झोकों के साथ-साथ विविध प्रकार की रहस्यमय छायाए हिलती-डुलती नजर आती। रमन ने कहा, 'इधर शायद कोई खतरा नही....'

मैं हसा। इस तरह कहकर रमन खुद को ही आश्वस्त कर रहा था। शायद समझ रहा हो कि मैं अब उसके पास नही हू। आधा घन्टा पहले उसने मुझे अपनी पत्नी के बाथरूम मे गिर जाने की खबर दी थी। दुर्घटना के समय का अगर पता रहता तो रक्तपात के परिणाम का अनुमान किया जा सकता था।

ठीक उसी समय अप्रत्याशित रूप से वह घटना घट गई जिसके साथ इतनी

...ता-फिक्र या उत्तेजना का कोई सम्बन्ध नहीं था।

... में से अचानक ही पांच-छः युवक प्रकट हुये। उनमें से एक सामने
...ओर से गाड़ी पर कूद पड़ा। मैंने एक्सीडेन्ट की आशंका से तुरन्त गाड़ी
...। फिर तो पलक झपकते ही उन्होंने गाड़ी का दरवाजा खोला और
...तर आ बैठे।

...गाड़ी चलाओ! जल्दी!'

...अस्फुट आवाज और अंधेरे में अस्पष्ट चेहरे। आश्चर्य का प्रथम प्रहार सम्हाल-
...कर मैंने पूछा, 'मामला क्या है? आप लोग इस तरह गाड़ी में कैसे आ बैठे?'

'गाड़ी चलाओ।'

मैं प्रतिवाद करता उससे पहले ही गर्दन पर ठण्डी धातु के स्पर्श से मेरा शरीर बर्फ-सा हो उठा। आंख से देखे बिना भी मैं सब कुछ समझ गया। कलेजा मुंह को आ गया। मैं समझ नहीं पा रहा था कि अब क्या करूं, क्या करना उचित है!

घटना की आकस्मिकता का शायद रमन पर भी गहरा असर हुआ था। थोड़ी देर तो वह स्तब्ध-सा चुप बैठा रहा। उसके बाद टूटे-फूटे शब्दों में बोला, 'मेरी पत्नी बहुत बीमार है। प्लीज, हमलोगों को छोड़ दीजिये।'

'ठीक है।' मैं गर्दन घुमा नहीं सकता था, लेकिन यह समझने में मुझे कोई असुविधा नहीं हुई कि यह आवाज किसकी है? उसने मेरी गर्दन पर से रिवाल्वर हटाकर मेरा कॉलर कसकर पकड़ लिया और बोला, 'इस साले की पत्नी बीमार है! इसको उतार दो।........'

'सर!'

रमन की कातर आवाज आई। मानो वह स्वर बहुत दूर से मुझ तक आ ...
है। 'सर-सर!........'

गर्दन पर फिर वही धातु का स्पर्श। मैं जानता हूं अब मुझे क्या करना ... जानता हूं कि मैं गाड़ी नहीं चलाऊंगा तब भी वह चलेगी। बॉनेट के ... मेरा कलेजा जोर-जोर से धक्-धक् कर रहा है, वही चलाकर ले ... गाड़ी।

अंधेरे के बाद अंधेरा। बहुत दूर आने के बाद मेरी गर्दन पर से धातु का स्पर्श हट गया। जिन्होंने मुझ पर यह कृपा की थी, उनका चेहरा देखने की जरूरत नहीं थी। सिर्फ खुद से ही मैंने प्रश्न किया, रमन, क्या तुम पहुंच गये हो?

मेरे सामने से एक-के-बाद-एक दृश्य बदलते जा रहे हैं। खूब घना अंधेरा होने के कारण ही इन दृश्यों को अलग-अलग पहचान पाना संभव नहीं है।

■ ■ ■

खून का रंग लाल

मिहिर आचार्य

बड़े बाबू के सामने आसामी को पेश किया गया ।

आसामी को देखकर दंग रह गये बड़े बाबू । अपनी जिन्दगी में आज से पहले ऐसा विचित्र दृश्य उन्होंने कभी नहीं देखा था ।

दुबला-पतला शरीर, पुरानी मैल से चीकट धोती, उलझे-बिखरे बाल, धूप से तपकर ताम्बई चेहरा और झुकी-झुकी आंखें । उम्र भी शायद चौदह या पन्द्रह के करीब होगी ।

क्या यही लड़का पॉलीटिकल केस का एक नम्बरी आसामी है ? क्या इसी को रिवाल्वर सहित गिरफ्तार किया गया है ? वरना क्या आज भारत के एक महान ज्योतिषी का असमय काम तमाम हो जाता ?

तो क्या संत्रास युग सचमुच लौट आया है ? बड़े बाबू ने सोचा ।

'क्या नाम है तुम्हारा ?'

'तो क्या मेरा नाम जाने बिना ही मुझे पकड़ा गया है ?' किशोर

जवाब था।

'हूम !' बड़े बाबू ने गंभीर स्वर में आवाज निकाली। 'रिवाल्वर तुम्हारे पास कहां से आयी? खिलौनेवाली नहीं, बिल्कुल सच्ची, शक्तिशाली आग्नेयास्त्र?'

'आ ही तो गई। यह तो आप भी देख ही रहे हैं।'

'इस उम्र में तुम्हारे हाथ में किताब-कॉपी शोभा देती है, रिवाल्वर नहीं।'

'आपको पता है, मेरा स्कूल से नाम काट दिया गया है!'

'क्यों?'

'और क्यों, आपकी सरकार चौदह साल के लड़के की पढ़ाई निःशुल्क नहीं कर सकती इसलिये।'

बड़े बाबू ने कहा, 'ओह तो, पढ़ाई-लिखाई नहीं कर पाये इसीलिये यह आवारा-गर्दी अपनाई है?'

किशोर ने कहा, 'क्या करता, आप ही बताइये! तीन दिन से घर में खाने को नहीं है। मेरी छोटी बहन नीलू अभी उस दिन मर गई। मां रोई, पिताजी रोये। मैं खुद अपने हाथों से उसे जंगल में गाड़ आया हूं।'

बड़े बाबू ने कहा, 'दारिद्र्य एक जातीय समस्या है। यह एक-दो दिन में तो खत्म हो नहीं जायेगी।'

किशोर ने कहा, 'तब तक मेरी बहन मरती रहेगी। यही न? इस जातीय समस्या को समझाने के लिये? क्या आप मेरी बहन को वापस लौटा सकते हैं? नहीं न?'

'तो क्या, इसीलिये रिवाल्वर उठा लोगे? इस अस्त्र से तुम दरिद्रता के विरुद्ध लड़ोगे? तुम्हें पता है, हमारे हाथ में कितनी ताकत है?'

'नहीं। दरिद्रता के विरुद्ध नहीं। आपलोगों की इस शक्ति, इसी ताकत के विरुद्ध मैं लड़ना चाहता हूं।'

बड़े बाबू ने कहा, 'तुम जो कुछ कह रहे हो वह तुम्हारे मन की बात है, यह मानने को तैयार नहीं मैं। ये सब बातें किसी की सिखायी हुई हैं।'

किशोर ने कहा, 'जन्म लेने के बाद ही तो मनुष्य सीखता है, बड़े बाबू। क्या मेरी उम्र में आपकी कोई बहन भूख से मरी है?'

'मैं अच्छी तरह समझता हूं कि तुम्हारे पीछे किसी दल का हाथ है, जो अपने

तुम्हारे जीवन को तहस-नहस कर देना चाहता है। मैं तुम्हें
का हूं। मैं तुम्हें बचाऊंगा।'
कीजियेगा, अपने पिता को मैं अच्छी तरह पहचानता हूं, उनकी पीड़ा
ी मैं खूब समझता हूं। आप किस तरह मेरे पिता को समझ सकते हैं?
त्रों के पिता की जात ही दूसरी होती है।'
ह गरीब और अमीर की बात नहीं है। सभी पिता एक समान होते हैं।'
नहीं। यह आपकी धोखा देनेवाली बात है। आप पिता हुए बिना भी
अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकते हैं जैसे कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है।'

बड़े बाबू ने पूछा, 'तुमने मीटिंग में मंच की ओर रिवाल्वर तानी थी—'

किशोर ने बीच में ही टोककर कहा, 'हां, मुझे थोड़ी देर हो गई जिससे मैं ट्रिगर नहीं दबा सका।'

'जानते हो, तुम क्या कह रहे हो? तुम्हारी बातों का मतलब क्या है?'

'मैं एक भालू का शिकार करना चाहता था।'

'भालू?'

'एक ही बात है। हम दोनों का जीवित रहना नामुमकिन है। एक को जाना ही पड़ेगा।'

'पता है, यह एक भयानक राजनैतिक अपराध है? इस अपराध की सजा फांसी तक भी हो सकती है।'

'जिन्दगी एक ही है, बड़े बाबू।'

'तुमको अपने प्राणों का भी मोह नहीं? खुद से प्यार नहीं तुम्हें?'

'है। खुद से प्यार करता हूं इसीलिये तो राह के रोड़े साफ करना चाहता

बड़े बाबू ने कहा, 'बाहर तुम्हारे माता-पिता आये हुए हैं। तुमसे मि
चाहते हैं।'

किशोर ने कहा, 'उनसे मिलकर मुझे क्या लाभ होगा?'

'तुम अपने माता-पिता को प्यार नहीं करते?'

'देखिये, मैं यहां कोई पारिवारिक नाटक के अभिनय के लिये नहीं
अगर आपको मुझसे और कुछ नहीं पूछना है तो मुझे लॉक

दीजिये।'

'तो तुम कुछ भी नहीं बताओगे ?' अब बड़े बाबू ने अन्य रूप धारण किया। 'रामसिंह !'

'जी, हुजूर।' रामसिंह ने सलाम किया।

'इसको ले जाओ। जब तक यह कुछ बताने को राजी न हो''''।'

'जी।'

किशोर को पकड़कर रामसिंह अंधेरी कोठरी में ले आया।

'बोल छोकरे, सच बात बोल।'

किशोर चुप।

हठात् तल-पेट पर एक घूंसा पड़ा जोर से। किशोर उछलकर दीवार से जा टकराया। सिर इतनी जोर से टकराया मानो फट गया हो।

रामसिंह ने उसको बिल्ली के बच्चे की भांति फिर से उठा लिया और पुचकारते हुए बोला, 'बोलो भाई, सच-सच बताओ। हाय राम !'

किशोर के होठों की कोर से खून बह चला था। दो दांत भी टूटकर गिर गये थे। पसीने से वह नहा उठा था तथा कपकपी से उसका समूचा शरीर हिल रहा था।

'तो कुछ भी नहीं बोलोगे ?'

बड़े बाबू ने आवाज दी, 'रामसिंह, आसामी को ले आओ।'

रामसिंह किशोर के बेहोश शरीर को घसीटकर ले आया।

बड़े बाबू ने कहा, 'यह देखो, तुम्हारे माता-पिता बैठे हैं। तुमसे कुछ कहना चाहते हैं।'

'मां।'

'बेटा ! कैसी हालत कर दी है इन्होंने तुम्हारी ?'

'मां, मुझे पानी''''।'

'रामसिंह, एक लोटा पानी ले आओ।'

पानी लाकर रामसिंह उसे देने लगा।

ने हांक लगायी, 'ठहरो ! क्यों छोकरे, अब तो सच बात

गे न ?'

र ने धुंधली दृष्टि से उनकी ओर देखकर कहा, 'पानी ।'

हां, पानी मिलेगा, पर उससे पहले तुम्हें सब बताना होगा'

ओर बड़बड़ाता-सा बोला, 'हां बताऊंगा, बताऊंगा ।'

रामसिंह, पानी दो ।'

किशोर पानी पीते-पीते उल्टी करने लगा ।

'हाय राम !' रामसिंह के मुंह से निकल गया ।

'बड़े बाबू, इतना खून कैसे ? लड़के का हृदय डूबता जा रहा है ।' मां आर्तनाद कर उठी ।

बड़े बाबू ने भी फुर्ती दिखाई, 'कहां, देखूं ?'

कलेजे के नीचे एक बहुत बड़ा घाव हो गया था । बिल्कुल ताजा घाव था और कच्ची चमड़ी के फट जाने के कारण घाव बनकर वहां से खून निकल रहा था ।

बड़े बाबू ने व्यंग्य से कहा, 'यह नाजुक तथा दुबला-पतला शरीर लेकर ही लड़ने चला था ! रामसिंह की दो लात तक तो सह नहीं सका । रामसिंह, डॉक्टर को बुलाओ ।'

किशोर की चेतना हॉस्पिटल की बेड पर लौटी ।

शाम के समय बड़े बाबू आये, ''अब कैसा जी है ?'

किशोर ने कहा, 'ठीक है ।'

'जल्दी ही ठीक होना पड़ेगा तुम्हें । तुम्हारे बयान पर ही एक बहुत बड़ा निर्भर करता है । फिर हम लोगों को भी तो अनुसन्धान करना पड़े उहूं, हिलो-डुलो नहीं । डॉक्टर ने कहा है, अगर बैंडेज खुल गई तो फिर किसी तरह से नहीं बचाया जा सकेगा । तुम्हारे शरीर में खून नहीं है

□

दो दिन बाद ।

बड़े बाबू बहुत ही आत्मीय बनकर उसकी बेड के पास चेयर खींचकर

गोद में डायरी का पेज खुला हुआ था और उंगलियों में पेंसिल दबी हुई थी।

'अब तुम शुरू हो जाओ।' बड़े बाबू ने आवाज में अभिभावक का-सा लाड भरते हुए कहा।

किशोर आंखें मूंदे लेटा हुआ था। उसके होंठ कांप रहे थे और सीना सांस से हिलता-सा दिखता था। उसके नासिका-रन्ध्रों में मानो किसी फूल की खुशबू तैरकर आ रही थी। पता नहीं, रजनीगंधा की या बेला की। सुगंधमय वातावरण की लहरों पर वह मानो कमल-सा तैर रहा था। किशोर के होंठों पर हंसी फैल गई।

बड़े बाबू दोनों पैर नचा रहे थे। उसके बाद जरा खांसे।

'बहुत देर आराम कर चुके।' बड़े बाबू ने उसके बालों में हाथ फिराया। 'हां तो, अब अच्छे बच्चे की तरह शुरू कर दो।'

अचानक किशोर ने प्रश्न किया, 'अच्छा बड़े बाबू, आदमी के मर जाने के बाद क्या होता है?'

बड़े बाबू हंसे, 'मृत्यु तो नश्वर देह की होती है, आत्मा थोड़े ही मरती है।'

'कल रात मैंने एक मजेदार स्वप्न देखा है।'

'स्वप्न?'

'हां, मैं मर गया हूं। फिर भी मुझे होश है। पता है, मैंने क्या देखा? देखा कि कितने ही भ्रमर मेरे चारों तरफ घुर्र-घुर्र कर रहे हैं।'

'भ्रमर!' बड़े बाबू बेमन-से हो-हो कर हंस पड़े। 'अच्छा, अब काम की बातें की जायें। हां तो, अपने दल की खबर सुनाओ। कौन-कौन हैं उसमें? उनका अस्त्रागार कहां है?........'

'बड़े बाबू, चमगादड़ पशु है या पक्षी?'

'एं!'

'आप नहीं बता सके न?' किशोर ही-ही हंसने लगा।

अब बड़े बाबू गंभीर हुए। 'शायद तुम मेरे साथ ठट्ठा कर रहे हो!'

'बड़े बाबू, आपको पता है, उल्लू दिन की रोशनी की ओर नहीं देख सकता

ाप जानते हैं, ऐसा क्यों होता है ? इसकी एक कहानी है ।'

मैं कहानी नहीं सुनना चाहता । मैं जो कुछ जानना चाहता हूं वह तुम वताग्रोगे कि नहीं ?'

'एक वार की वात है, मेरी वहन है ना, वह मेरे पांव में गुदगुदी कर रही थी और मुझे वहुत जोर की हंसी आ रही थी । नीलू ऐसी ही शरीर है न !'

'चालाकी अपने पास ही रखो । तुम सोचते हो कि वातों में मुझे वहला लोगे ? कुछ वताओगे नहीं ? तो ठीक है । तुम भी सुन लो । हमलोग सच उगलवाना जानते हैं । डॉक्टर साहव के पास एक ऐसा इन्जेक्शन है कि तुम्हें वेहोश करके तुम्हारे मुंह से सारी सच वात उगलवा लेंगे । मैंने सोचा था कि उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी । अव तुम तैयार रहना । कल ही डॉक्टर से तुम्हारे इन्जेक्शन लगवाने का इन्तजाम करता हूं ।'

वड़े वावू गुस्से में भरकर वहां से निकल गये ।

किशोर को सारी रात नींद नहीं आयी । वह विस्तर पर पड़ा छटपटाता रहा, क्योंकि इन्जेक्शनवाली वात ने उसे वहुत ही चिन्तित कर दिया था । अगर सचमुच ही वेहोशी की हालत में उसने सव स्वीकार कर लिया........तो ? जव तक होश में है तव तक तो डरने की कोई वात नहीं है । लेकिन वेहोशी में वह क्या वक जायेगा, यह तो उसके वस की वात है नहीं ।

खिड़की से वाहर हल्दिया चांद दीख रहा था ।

अस्पताल निस्तव्ध था । रात की ड्यूटी पर तैनात नर्स विल्ली की तरह पर वैठी ऊंघ रही थी । उसको एक वार मां की याद आयी । मां वहुत है । 'मां, मैया, मां !' उसने अस्पष्ट आवाज में मां को पुकारा ।

□

दूसरे दिन सुवह डॉक्टर को लेकर वड़े वावू उसके वेड की ओर वढ़े । लेकिन पास पहुंचकर जो विभीषिका उन्होंने देखी उसके सामने वे स्थिर, मूर्तिवत खड़े-के-खड़े रह गये । एक चौदह साल के लड़के लापरवाह हिम्मत आई तो कहां से ?

वेड पर विछी चादर खून से लथपथ हो लाल हो गई थी । वेड पर

धारा बह-बहकर नीचे गिरी थी, और ढेर-सारे खून के बीचों-बीच एक बलि के बकरे की तरह पड़ा था किशोर। दोनों आँखें खुली थीं। चेहरे पर ज्योतिर्मय मुस्कुराहट थी।

डॉक्टर ने कहा, 'लड़का आपको गच्चा दे गया। उसने अपने हाथों कच्ची बैंडेज खोल डाली। रात भर में उसने अपना सारा खून निचोड़ डाला है।'

बड़े बाबू खड़े-खड़े पसीना-पसीना हो रहे थे।

■ ■ ■

उस्ताद

सुनील गंगोपाध्याय

○ ○ ○ ○ ○

'ऐ डाबू, बुड्ढे को बुलाकर ला।'

'बुलाता हूं, उस्ताद।'

'भागकर जा और दौड़कर आ। कुत्ते की चाल चलना, बिल्ली की चाल नहीं। समझा?'

'समझ गया, उस्ताद! चाय-वाय चढ़ा लूं जरा।'

'जाते समय मालूम करना कि नौ पच्चीस की रानाघाट लोकल ट्रेन लेट है कि नहीं।'

'स्टेशन जाऊं?'

'हां, स्टेशन जा। और बुड्ढे से कहना, तुरन्त आये।'

डाबू चाय की दुकान में से उठकर बाहर निकल गया। उसके चलने का ढंग भी बहुत ही विचित्र था। देखने में यों लगता मानो उसके शरीर के किसी हिस्से में कोई तकलीफ हो। सामने देखते हुए तो जैसे चलना जानता ही न

वह। अचानक ही वह कभी बायें, कभी दाहिने, तो कभी एकदम पीछे की ओर गर्दन घुमा लेता। उसके दोनों हाथ कभी भी एक-साथ बाहर नहीं रहते थे। एक हाथ पेन्ट की जेब में अवश्य ही रहता। चलते-चलते वह अचानक सड़क पार कर दूसरे फुटपाथ पर आ जाता। कोई लड़की दिखाई पड़ जाती तो उसकी आँखें बस वहीं जम जाती, और तब वह कुछ देर वहीं ठिठक जाता। लड़की नजर आते ही वह होंठ बिचकाने तथा आँखें मटकाने लगता। लड़की जितनी खूबसूरत होती, उसकी यह क्रिया उतनी ही तीव्र गति पकड़ लेती।

'ऐ परी, इधर आ।'

'क्या बात है, उस्ताद?'

'देख तो इस लाइटर में क्या खराबी है? जलता नहीं है स्साला। कल सुबह ही तो पेट्रोल भरा है।'

'शायद पत्थर खतम हो गया है।'

'धत् तेरे की!'

'यह क्या, उस्ताद! लाइटर ही फेंक दिया! इतनी कीमती चीज फेंक दी!'

'चुप कर। और बहुत आयेगी।'

परी चुप हो गया। उस्ताद यानी पल्टू की इस तरह की आदत से वह अच्छी तरह परिचित है। किसी-किसी दिन पल्टू को यों ही चीजें बरबाद करने की मन में आ जाती है। अब इस कीमती लाइटर की बात को ही लें, अगर वह उठाने जाय तो जोर की डाट खायेगा। थोड़ी ही देर पहले, सिगरेट खरीदते समय पल्टू ने दस का नोट भुनाया था। भुनाते वक्त पल्टू के हाथ से एक का नोट जमीन पर गिर गया था, पर पल्टू ने वह नोट वापस नहीं उठाया। पास ही एक भिखारी का लड़का एक अन्य व्यक्ति के सामने एक पैसे के लिये रिरिया रहा था। पल्टू ने उसको पुकार, रुपया दिखाकर कहा, 'ले, यह रुपया उठा ले। यह रहा। ले ले।'

आज पल्टू शायद और भी बहुत-कुछ फेंक देगा या बरबाद करेगा।

पल्टू, परी, डाबू, बुड्ढा इन सभी का एक-एक अच्छा नाम भी है। लेकिन बहुत दिनों से वे नाम व्यवहृत नहीं हुए। किसी ने उस नाम से उन्हें नहीं पुकारा।

वे लोग एक चाय-दुकान की एक केबिन में बैठे थे। पर्दा गिरा हुआ नहीं है फिर भी उनके रहते उस केबिन में कोई नहीं घुसेगा। यहां तक कि आवाज दिये बिना बेयरे तक की वहां झांकने की हिम्मत नहीं होती।

पल्टू ने अपने कप में बची हुई चाय को एश-ट्रे में डाल दिया। उसके बाद जमीन पर रखे थैले में बहुत ही सावधानी-पूर्वक हाथ डालकर शराब की एक बोतल निकाली। अपने कप में लबालब शराब भरकर परी से बोला, 'ला, तेरा कप भी खाली करके दे। डाबू के सामने इसलिये नहीं निकाला कि वह जरा-सी लेते ही डाउन हो जाता है। क्या चीज है, देखी तूने!'

परी ने शराब की बोतल पर चिपके लेबल को परखते हुए कहा, 'अरे वाह, बॉस, यह तो—'

पल्टू ने कप को होंठों के पास ले जाकर उस रंगीन पदार्थ को एक ही घूंट में खतम कर दिया। खूबी यह कि न तो उसके चेहरे की एक भी रेखा कांपी और न ही उसे हिचकी आई। परी प्रशंसा भरी नजरों से उसकी ओर देखे जा रहा था। फिर बोला, 'यह हुई न कोई काम की बात!'

इस तीखे अर्क को पान करने की प्रतिक्रिया सिर्फ उसकी आंखों में दिखाई पड़ी। कप खाली होने के साथ ही उसकी आंखों के डोरे लाल हो उठे।

कप को दुबारा भरते हुए पल्टू बोला, 'ऐसे दिनों में मुझे सबसे अधिक कौन याद आता है, जानते हो? पगला। पगले के चले जाने से मानो मेरा दाहिना हाथ ही चला गया हो।'

परी ने कहा, 'पगला भी साला पॉलीटिक्स से भिड़ने क्यों गया था भला। मैंने तो उससे उसी समय कहा था कि ये सब बेकार के झमेले हैं। हर दिन कोई नई बात कहते हैं ये राजनीतिज्ञ लोग।'

पल्टू गम्भीर हो जाता है। फिर अपने आप बड़बड़ाता है, 'पगले की पत्नी भी झंझटिया थी।'

डाबू ने आकर कहा, 'बुड्ढा नहीं आ सकेगा। उसने कहा है कि उसे बुखार है।'

पल्टू ने क्रुद्ध होकर कहा, 'उसने ही कहा या तूने भी देखा?'

'बुड्ढा लेटा हुआ था यह तो मैंने भी देखा। सावी ने भी मुझसे कहा—'

पल्टू उठ खड़ा हुआ और बोला, 'चल, देख आते हैं। अच्छा, ट्रेन लेट है क्या ?'

'बीस मिनिट।'

सड़क पर वे तीनों पास-पास कभी नहीं चलते। एक-दूसरे से दूरी रखते हुए चला करते। इस शहर की सड़कों, रास्तों, दुकानों, मकानों एवं जिन्दगी के जो एक प्रकार के अपने नियम हैं, ये लोग उन सभी नियमों से बाहर हैं। ये लोग एक-दूसरे से इतनी दूरी पर रहते हुए भी एक-दूसरे के लिए पूरी तरह सतर्क रहते हैं।

विपरीत दिशा से चार-पांच लड़कों का एक और दल चला आ रहा है। यहाँ के रास्ते भी बंटे हुए हैं। इस तरह एक ही समय एक ही रास्ते से एक साथ दो दलों का गुजरना, नियम के विरुद्ध है। जंगल में भी तो यही नियम चलता है।

फिर भी पल्टू के साथ रहने पर उसके दल को कोई तङ्ग नहीं करता। पर इस समय खुद पल्टू ने ही उन्हें निर्विरोध चले आने का अधिकार दे दिया। पल्टू अपने दल के साथ दीवार से लगकर खड़ा हो गया। हाथ में स्थित सिगरेट आधी भी नहीं खत्म हुई थी कि उसे फेंककर पल्टू ने बहुत ही मनो-योग सहित दूसरी सिगरेट सुलगा ली।

रेलवे लाइन को पार कर एक बस्ती आती है। बस्ती के एक कोने में बुड्ढे का घर है। बुड्ढे की उम्र करीब तीस बरस है। चादर मुंह पर लपेटे बुड्ढा सोया पड़ा है। खटिया के पास एक दुबले चेहरेवाली लड़की खड़ी है।

पल्टू ने कमरे में घुसते ही एक झटके से बुड्ढे के बदन पर से चादर खींचकर दूर फेंक दी और कहा, 'ऐ साला!'

'मां कसम, आज मुझे बुखार है। आज मैं नहीं जाऊंगा!'

'स्साले, भालू के बच्चे! तुम्हारे बुखार की ऐसी-तैसी।'

परी हंस रहा था। पल्टू की चीजें बरबाद करने की आदत एवं बुड्ढे की बुखार का बहाना करने की आदत, दोनों की आदतें एक-सी थीं। हर बार ऐसा ही होता है।

पल्टू शराब की बोतल निकालकर बुड्ढे के मुंह से लगाते हुए बोला, 'ले,

पी स्साले। तेरा बुखार तो क्या बुखार का बाप भाग जायेगा इससे।'

दुबले-पतले चेहरेवाली लड़की ने तीखी आवाज में पल्टू से कहा, 'मैं पूछती हूं, यह सब क्या हो रहा है? वह आज एकदम नहीं जायेगा! मैं कहती हूं, वह नहीं जायेगा।'

पल्टू हंस पड़ा। इस तरह की भयानक हंसी हंसने का उसने अभ्यास किया है या जन्मजात आदत है, पता नहीं। पर उस हंसी को देखनेवालों के बदन सिहर उठते हैं।

झट से उसने लड़की का एक हाथ कसकर पकड़ लिया और हाथ को मरोड़ते हुए बोला, 'बोल, अब बोल, तोड़ दूं?'

लड़की दर्द के मारे चीख पड़ी। बोली, 'आह, दर्द होता है। हाय, टूट जायेगा मेरा हाथ।'

पल्टू हसते-हंसते और भी जोर से उसका हाथ मरोड़ने लगा। इस बीच बुड्ढा भी हड़बड़ाकर उठ बैठा। बुड्ढे ने कुछ अनुनय तथा कुछ भर्त्सना का सम्मिश्रण कर कहा, 'ओह, यह क्या करते हो, उस्ताद? औरत जात के शरीर पर हाथ क्यों डालते हो?'

पल्टू ने उसकी बात अनसुनी कर लड़की का हाथ छोड़ दिया और तड़ाक् से एक चांटा लड़की के गाल पर जड़ दिया। फिर बोला, 'आगे से कभी मेरे सामने जवाब देने की हिम्मत मत करना। समझी?'

और फिर बुड्ढे की ओर मुड़कर बोला, 'चल, औजार ले लिया है न? जल्दी चल।'

लड़की ने दर्द से बेहाल हाथ को सहलाते-सहलाते कहा, 'मरो। आज ही तुम सब-के-सब मर जाओ। तुम सब मरोगे उस दिन मैं सत्यनारायण भगवान की कथा कराऊंगी, शीतला माता पर जल चढ़ाऊंगी, और तुम लोगों की चिता पर बैठकर कीर्तन करूंगी।'

पल्टू दस का एक नोट उसकी ओर उछालकर जमीन पर फेंकता हुआ बोला, 'मैं चला, नानी। तेरे बुड्ढे को सही-सलामत तेरे पास पहुंचा दूंगा। मैं मरूं या जीऊं पर तेरा बुड्ढा तुझे सही-सलामत वापस मिल जायेगा। तब तू मांस लाकर पकाना, रांधना। समझी?'

उनके बाद बस्ती के पीछे की ओर खड़ी की गई जीप में सवार होकर पन्द्रह मिनिट तक उन लोगों ने निरर्थक चक्कर लगाये। कोई उद्देश्य नहीं, सिर्फ गाड़ी में बैठकर घूमना। गाड़ी में बैठे-बैठे ही शराब की बोतल शेष हो गई। पल्टू ने उसे सड़क पर फेंक दिया। खाली बोतल का शीशा झनझनाकर चूर-चूर हो गया। आखिर जीप रेलवे स्टेशन के सामने आकर रुकी। वे तीनों उतर गये। परी जीप स्टार्ट कर वहां से चला गया।

स्टेशन पर भी वे तीनों पास-पास खड़े नहीं हुए, एक-दूसरे से विशेष दूरी रखकर खड़े थे। ट्रेन के आते ही तीनों व्यक्ति तीन डब्बों में चढ़ गये; और इस तरह चढ़े मानो आपस में एक-दूसरे को पहचानते ही न हों। करीब पन्द्रह मिनट चलने के बाद दो लम्बी तथा एक छोटी व्हिसिल देते-देते ट्रेन की गति मंथर हो गई और आखिर एक अंधेरे जगल में ठहर गई ट्रेन। क्यों ठहर गई, इसका किसी को भी पता नहीं।

झट-पट वे तीनों नीचे उतर गये। दो-एक पल उनमें पता नहीं क्या विचार-विनिमय हुआ और उसके बाद तीनों एक ही डब्बे में सवार हो गये। ट्रेन फिर से धीरे-धीरे चलने लगी।

पल्टू के हाथ में रिवाल्वर था तथा डाबू और बुड्ढे के हाथों में छुरे थे। डब्बे में उन्नीस या बीस से अधिक यात्री नहीं थे। पल्टू ने यात्रियों की ओर मुखातिब होकर भयानक रूप से दांत पीसते हुए कहा, 'कोई भी चिल्लाया तो गोली मार दूंगा। सालो, निकालो जिस-जिसके पास जो माल है!'

डब्बे में बैठे यात्री निस्तब्ध-निस्पंद-से बैठे थे। सिर्फ एक प्रौढ़ उम्र की महिला डर के मारे चिल्ला पड़ी थी, क्योंकि डब्बे में वही एकमात्र महिला थी। पर किसी ने भी कुछ निकालकर नहीं दिया। बुड्ढा, सचमुच के एक वृद्ध के पास जाकर बोला, 'घड़ी खोल, साले। इस तरह मुंह बाए क्या देख रहा है?'

पता नहीं घड़ी खोलने का हुक्म सुनकर या अपने लिये साला शब्द सुनकर वृद्ध सचमुच ही हक्का-बक्का रह गया था।

बिल्कुल अकारण, सिर्फ अपने बैंताल दिल की खुशी के लिये, पल्टू ने अपने समीप बैठे आदमी के सीने पर रिवाल्वर की नाल रखते हुए अश्लील एवं वीभत्स गाली-गलौज करते-करते इतनी जोर से उसके मुंह पर घूंसा मारा कि उसी समय होंठ कटकर बेचारे के होंठों से तथा मुंह से खून बहने लगा।

अब, टपा-टप रुपये, पैसे, घड़ी आदि चीजें निकलने लगीं चारों ओर से। डाबू उन सभी चीजों को थैले में भरता जा रहा था और बुड्ढा जा-जाकर लोगों की तलाशी ले रहा था। एक आदमी की अंटी में सात हजार रुपये मिले। इतने रुपये लेकर वह रात की ट्रेन से सफर क्यों कर रहा है, इसका जवाब कौन देता?

प्रौढ़ महिला अपने गले का हार देने को किसी तरह भी राजी नहीं हुई। गहनों से औरतों को बहुत प्यार होता है। पल्टू खुद महिला के समीप पहुंचा और हार को अपनी मुट्ठी में कसकर जोर का झटका दे तोड़ लेना चाहा, पर हार इतनी सहजता से टूटनेवाला नहीं था। पल्टू स्वभावतः लड़कियों से बहुत निष्ठुरता से पेश आता है। उसने उक्त महिला की छाती पर एक हाथ रख पीछे की ओर ढकेला तथा दूसरे हाथ से हार को पकड़कर कई झटके दिये, तब कहीं हार टूटा। उस महिला के तो मानो प्राण ही निकल गये हों इस तरह की एक चीख मारी उसने। पता नहीं, शारीरिक पीड़ा महसूस करके या हार खोने के दुःख में।

कुल मिलाकर, चीजें कम इकट्ठी नहीं हुई थीं फिर भी उनको ट्रेन से उतरने की कोई जल्दी नहीं थी। दो व्यक्तियों की छाती पर छुरी रखे डाबू और बुड्ढा उनसे पेन्ट खुलवा रहे थे। यह सब सिर्फ खेल नहीं था, टेरिलीन की पेन्ट थीं। कम-से-कम सत्तर-अस्सी रुपये की तो होगी ही। बेचारे एक ने तो पेन्ट-बुश्शर्ट दोनों ही खोल दिये। दूसरे व्यक्ति को ज्यादा ही शर्म आ रही थी, वह किसी तरह भी पेन्ट खोलने को तैयार नहीं था। बुड्ढे का पारा गर्म हो गया, उसने उस आदमी के पेट में छुरा भोंक दिया। यह उस व्यक्ति की शर्म की कीमत थी।

रक्त-दर्शन के साथ-साथ ही दृश्य पलट गया। इतनी देर सब चुपचाप बैठे थे। डर के मारे सभी यात्री चीखने-चिल्लाने लगे। उन्होंने भी फुर्ती से अपनी सभी चीजें समेट लीं। ट्रेन उस वक्त तक बहुत धीमी चाल से ही चल रही थी, अतः वे बड़ी फुर्ती से ट्रेन से कूद गये। अब तक डब्बे में चीख-पुकार बहुत जोरों से मच गई थी।

इतना सब होने के बाद बम फेंकने की जिम्मेदारी बुड्ढे की थी। झोले में से निकाल-निकालकर एक-के-बाद-एक तीन बम फोड़े भागने से पहले। ट्रेन अब एकदम रुक गई। कुछ सिपाही बहुत ही मुस्तैदी के साथ भाग-दौड़ करने

लगे; जिस डब्बे में गोल-माल हुआ है उसे बाद देकर तथा पल्टू लोग जिधर भागे हैं उसकी विपरीत दिशा में ही वे अधिक भाग-दौड़ कर रहे थे।

परी जीप लिये तैयार खड़ा था। उन लोगों के जीप में सवार होते ही उसने पूछा, 'माल-वाल कैसा हाथ लगा? बढ़िया?'

पल्टू ने कहा, 'बुरा तो नहीं। पर तू जल्दी चला।'

मानो रसगुल्ले का रस हो इस तरह पल्टू ने बुड्ढे से कहा, 'बुड्ढे, तेरे हाथ में खून लगा है, कहीं मेरे शरीर से मत छुआ देना।'

जीप दौड़ी जा रही थी। अब तक तो प्रोग्राम बहुत ही सफल रहा। इससे पहले के दो प्रोग्राम भी इसी तरह सफल रहे थे। कहीं भी किसी प्रकार की मुसीबत में नहीं फंसे। लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद ही उन्होंने देखा कि दो जीप उन्हीं का पीछा करती चली आ रही हैं। पर ऐसा होने की कोई संभावना तो नहीं थी।

परी का दिमाग ठंडा था, उनकी गाड़ी बहुत आगे निकल आई थी अतः खतरा बहुत ज्यादा तो नहीं था। थोड़ी देर तेज रफ्तार से गाड़ी चलाने के बाद परी ने कहा, 'उस्ताद, सामने चेक-पोस्ट है, गाड़ी स्लो करनी पड़ेगी।'

पल्टू ने गर्दन घुमाकर पीछे की ओर देखने की कोशिश की और बोला, 'उस जीप में ओ. सी. है क्या? अगर ओ. सी. है तो—'

इतनी देर से बाबू भी पीछे की ओर ही देख रहा था। उसकी तेज नजरें बाइनाकुलर की तरह दूरी को पास ले आती थीं। उसने चौंककर कहा, 'पुलिस नहीं, मिलिट्री है।'

मिलिट्री के साथ रेस लड़ने से कोई फायदा नहीं। इसके अलावा, यह भी तो संभव है कि, मिलिट्री उनका पीछा नहीं कर रही हो। उनके साइड देने पर शायद वे आगे चले जायें। जरा आगे, दाहिनी ओर एक सकरा रास्ता है, मगर वे उधर मुड़ना चाहेंगे तो भी उन्हें गाड़ी की रफ्तार तो कम करनी ही पड़ेगी।

पल्टू ने कहा, 'साइड कर। परी, साइड कर।'

लेकिन गाड़ी की गति धीमी होते ही उधर से गोलियों की बौछार होने लगी इन पर। और कोई उपाय भी तो नहीं था। सिर झुकाते ही गोली लगनेवाली बात

हो गई। इस अंचल में शायद हाल में ही कर्फ्यू लगा है। पॉलीटिक्स-बाज लड़कों ने इधर कोई कांड किया है और उनकी गलती का दंड पल्टू आदि को भुगतना पड़ रहा है।

अचानक जीप में ब्रेक लगा, परी गाड़ी से कूदकर अंधेरे की ओर भाग गया। वह इतनी शीघ्रता से चम्पत हुआ कि एक पल पहले तक उसके साथी उसके मतलब को नहीं समझ पाये। डाबू भी कूद गया था। पल्टू के हाथ में रिवाल्वर था पर सिर्फ एक रिवाल्वर से मिलिट्री का सामना नहीं किया जा सकता। भागने की सुविधा प्राप्त करने हेतु बुड्ढे एवं पल्टू ने सड़क पर बम फेंकने शुरू कर दिये।

वे बहुत दूर तक दौड़ चुके थे लेकिन इस बीच फौजी भी जीप से उतरकर लगातार उनका पीछा कर रहे थे। इसी भाग-दौड़ में बुड्ढे की पीठ में गोली लगने से वह वहीं गिर गया। पल्टू एक पीपल के पेड़ के मोटे तने के पीछे छिपा खड़ा था। अभी भागा जा सकता है लेकिन एक फौजी बुड्ढे की देह की ओर आ रहा था। बदला लिये बिना भाग जाना पल्टू के खून में ही नहीं है। शायद बुड्ढा अभी भी जीवित हो।

उस व्यक्ति ने बूट से बुड्ढे की देह पर ठोकर मारी, तो पल्टू ने लगातार तीन गोलियां उस पर चलाकर उसके शरीर को छेद डाला। उसके बाद पता नहीं कहां से एक गोली उसके दाहिने बाजू में आकर लगी।

पल्टू और उसके साथियों का दुर्भाग्य ही कहिये कि वे फौजी ऑफिसरों की दो जीपों के सामने पड़ गये थे। ट्रेन से उतरकर कुछ लोगों ने फौजी अफसरों की जीप को रोककर ट्रेन में हुई डकैती के बारे में बताया था।

गोली खाकर पल्टू जमीन पर गिर पड़ा, लेकिन दूसरे ही पल वह उठकर भागने लगा था कि एक मजबूत हाथ ने उसकी गर्दन धर दबायी।

हाथ की पीड़ा के मारे पल्टू मरा जा रहा था। अतः क्रुद्ध हो पागल कुत्ते की तरह घूमकर उसने छुरी मारनी चाही कि उसकी कनपटी पर जन्नाटेदार एक थप्पड़ पड़ा। थप्पड़ पड़ने के बावजूद पल्टू के मुंह से आश्चर्यजनक आवाज में निकल पड़ा, 'साधन दा!'

फौजी अफसर ने पूछा, 'कौन?'

'साधन दा, मैं हूं, पल्टू। मुझे छोड़ दो।'

'कौन हो तुम ?'

हाथ का दबाव गर्दन पर कुछ ढीला पड़ गया था। इसी मौके का फायदा उठा, पल्टू ने खुद को फौजी अफसर के पंजे से मुक्त कराकर भागना शुरू कर दिया। जाने से पहले पल्टू ने अपने विरोधी को [illegible] पर सिर से जोरदार प्रहार किया था और कुछ अश्लील गालियां भी दे गया था। अब उसे कोई भी नहीं पकड़ सकता।

पीछे से चिल्लाने की आवाज सुनाई पड़ी, 'हॉल्ट ! [illegible]।'

लेकिन अब भला पल्टू कहाँ रुकनेवाला था ! उसके पैरों में [illegible] है। बुड्ढे को मारने का बदला ले लिया है उसने। अब उसकी कोई जिम्मेदारी बाकी नहीं रही।

दुबारा दहाड़ सुनाई पड़ी, 'रुक जाओ !' पर पल्टू रुका नहीं। [illegible] स्टेनगन की गोलियों से उसका शरीर छलनी हो गया। [illegible] एक शब्द भी नहीं बोल सका। उसका शरीर [illegible] उसके प्राण-पखेरू उड़ गये थे।

D

'क्यों रे पल्टू, क्या हाल-चाल हैं तेरे ?'

'साधन दा, मेरी मां मर गई है।'

'ओह, कब ?'

'यही, करीब डेढ़ महीना हुआ होगा।'

'तभी, तुम्हारा घुटा-घुटा-सा सिर देखकर [illegible] तो मैं तुम्हें पहचान ही नहीं सका। [illegible]'

'कुछ नहीं। बस यों ही [illegible]'

'ओह ! पता ही नहीं चला मुझे तो। [illegible]'

'तुमलोग कलकत्ता [illegible] !'

'नहीं। हमलोग तो अब [illegible] तुम्हारे पिताजी तो अच्छे ही [illegible] ?'

'हां। पिताजी ने [illegible] रहते हैं।'

'चेहरे से तू इतना भोंदू सरीखा क्यों दीख रहा है ? पढ़ाई-वढ़ाई तो करता है न ?'

पल्टू ने शर्म से सिर झुका लिया और बोला, 'मुझसे पढ़ाई नहीं होती। दिमाग ही नहीं है मेरे पास।'

साधन ने हंसते हुए कहा, 'तो गर्दन पर इतना बड़ा सिर बिल्कुल खाली है क्या ? स्कूल फाइनल में कितनी बार फेल हुआ ?'

'दो बार।'

'तो तीसरी बार भी हो जाते। कोशिश तो करते।'

'तुम्हें तो पता ही है साधन दा, मां तो है नहीं, पिताजी मुझे और आगे पढ़ायेंगे नहीं।'

'तो फिर, तू अब क्या करेगा ?'

'कोई नौकरी-वौकरी ढूंढ़नी पड़ेगी। ड्राइविंग सीख रहा हूं, शायद ड्राइवर की नौकरी मिल जाय।'

'इतनी छोटी-सी उम्र में तुझे नौकरी पर कौन रखेगा ? कितनी उम्र होगी तेरी इस वक्त ? सोलह या सत्रह का होगा तू ?'

'उन्नीस का हो गया हूं।'

'उन्नीस का हो गया ? तो फिर ड्राइवरी करके क्या करेगा ? किसी कारखाने में घुस सके तो कोशिश कर।'

'तुम्हारी तो बहुत जगह जान-पहचान है, जरा मेरे लिये भी कोशिश करो न !'

'अच्छी बात है, देखूंगा। आजकल नौकरी का बाजार इतना तंग है कि बस पूछो मत।'

'तो, तुम वापस दिल्ली चले जाओगे ?'

'हां। अभी एक महीने की छुट्टी पर हूं। तुम्हें मालूम है न, मैं आजकल आर्मी में हूं।'

'हां, जानता हूं। तुमलोग अभी भी उसी मनोहरपुकुर वाले मकान में ही रहते हो न ?'

'हाँ वही। माना कभी। अच्छा तो अब मैं चलूं—'

'ठहरो न। इतने दिनों बाद तो तुम मिले हो।'

'तो चल, चाय पीयें।'

साधन ने पल्टू के कंधे पर हाथ रख चाय की दुकान की ओर कदम बढ़ाये। चलते-चलते बहुत ही अपनत्व भरे शब्दों में बोला, 'तेरी मां मर गई सुनकर मुझे बहुत ही दुःख हुआ। मुझे इतना चाहती थी, इतना स्नेह करती थी कि, क्या बताऊं! यह खबर सुन मेरी मां को भी बहुत ही दुःख होगा।'

ロ

'मां देखो, साधन दा!'

'कहां? हाय राम, सचमुच, यह साधन ही तो है।'

'बुलाऊं?'

'जा, जा। बुलाकर ला।'

'ओ साधन दा! साधन दा! मुझे नहीं पहचाना?'

'कौन?'

'मैं पल्टू।'

'अरे''''', पल्टू! तू तो पहचाना ही नहीं जाता अब। कितना बड़ा हो गया है रे!'

'वाह, तुम भी तो बड़े हो गये हो। वह देखो, मां वहां खड़ी है।'

'सच! चल, मिल आऊं।'

साधन ने पास पहुंचकर पल्टू की मां के चरण-स्पर्श किये। मां ने भी आशीर्वाद दिया, 'जीते रहो बेटा, सुखी रहो। कितने दिनों बाद तुम्हें देखा है!'

साधन ने कहा, 'हां चाची, सच, बहुत दिन हो गये। पल्टू को देखकर मैं तो चकित रह गया। पहचान ही नहीं पाया। कितना बड़ा हो गया है यह! कौन-सी क्लास में पढ़ता है रे पल्टू?'

'क्लास सेवेन में। देशबन्धु विद्यालय में।'

मां ने पूछा, 'साधन, तुम अभी क्या पढ़ ही रहे हो?'

'इस बार मैंने आई० एस-सी० की परीक्षा दी है।'

'अच्छी बात है बेटा, बहुत ही खुशी की बात है। भगवान करे तुम और अधिक विद्वान बनो, मां-बाप का नाम रौशन करो। यहां अचानक कैसे आये, बेटा ?'

'दोस्तों के साथ मुर्शिदाबाद की सैर करने आया हूं। बहरामपुर स्टेशन के पास ही एक होटल में ठहरे हैं।'

'होटल में ठहरे हो ? क्यों ? तुम यहां आ जाओ न।'

'नहीं चाची, दोस्तों के साथ आया हूं न, इसलिए उन्हीं के साथ रहना ठीक रहेगा। इसके अलावा, हमलोग कल तो जा ही रहे हैं।'

'तेरी मां कैसी है ? कलकत्ता में तुमलोग किस जगह रहते हो ?'

'हमलोगों ने मनोहरपुकुर में एक मकान खरीदा है। आप आइये न किसी दिन। आपको देखकर मां बहुत खुश होंगी। मैं मां से कहूंगा कि आपसे मिला हूं मैं।'

'मैं तो बस जा चुकी, बेटा ! मुझे ले ही कौन जायेगा ? उनका स्वास्थ्य तो ठीक नहीं रहता।'

'क्यों ? क्या पल्टू नहीं ले जा सकेगा ? हां रे पल्टू, तू ट्रेन में बैठकर नहीं जा सकेगा ? ट्रेन से उतरकर एट-बी बस में चढ़ जाना।'

'हां, मैं जा सकता हूं।'

मा ने कहा, 'चलो साधन, थोड़ी देर हमारे घर चलो न। दूर नहीं, बस पास ही है। इतने दिनों बाद तुम्हें देखा है।'

'चाची, दो मिनिट यहीं ठहरो, मैं दोस्तों से कह आऊं जरा।'

मा ने घर का दरवाजा खोलकर भीतर प्रवेश करते हुए साधन से कहा, 'आओ, इस खाट पर बैठो। रहने दो, रहने दो; जूते उतारने की कोई जरूरत नहीं। पहले से ही घर कौन-सा साफ-सुथरा है ! ऐसी हालत है मकान की कि, बाहर का कोई भी आ जाता है तो शर्मिन्दा होना पड़ता है। तुम्हारी बात दूसरी है। तुम तो अपने ही लड़के जैसे हो। जब अपने देश में थे तो तुम्हारी मां और मुझमें कितनी गहरी मित्रता थी। उसके घर में विशेष कुछ भी बनता तो मुझे खिलाये बिना नहीं खाती थी। इसी तरह मैं भी कुछ अच्छी चीज बनाती तो—'

'हां चाची, मुझे सब कुछ याद है।'

'तेरी बहन चन्दना की शादी हो गई क्या ?'

'हां, दीदी की शादी हो गई। दीदी भी आजकल दिल्ली में ही रहती है। जीजाजी, सेन्ट्रल गवर्नमेन्ट में एक ऑफिसर हैं।'

'वाह भई, बहुत ही खुशी की बात है। सच मुझे बहुत खुशी हुई यह खबर सुनकर। भगवान करे उसकी गृहस्थी सदा हरी-भरी रहे। और तेरे छोटे भाई के क्या हाल हैं ?

'वह तो दार्जिलिंग में पढ़ता है। चाची, झरना दीदी कहां है आजकल ?'

'झरना दीदी को नर्सिंग में भरती करवा दिया है। नर्सिंग की ट्रेनिंग पास कर ले तो कुछ कमाने लायक हो जायेगी। क्या करूं, शादी तो कर नहीं सकी उसकी। और फिर करती भी कहां से ? घर में कोई भी तो नहीं है कमाने-वाला। तुम्हारे चाचा तो हरदम बीमार ही रहते हैं। सुन रहे हो न, खांसी की आवाज ? बस इसी तरह चलता है इनके—कभी खांसी, कभी बुखार।'

'डॉक्टर को नहीं दिखाया ?'

'अस्पताल में दिखाया था। वे लोग अस्पताल में भर्ती करवाने को कहते हैं। लेकिन भर्ती करवाना इतना आसान थोड़े ही है !'

'चाची, आपका चेहरा भी कितना बदल गया है। स्वास्थ्य गिर गया है। पहले आप कितनी सुन्दर लगती थीं, क्या स्वास्थ्य था आपका !'

'नहीं-नहीं, मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं बिलकुल ठीक हूं।'

'तो, अब मुझे आज्ञा दीजिये। दोस्त लोग इन्तजार कर रहे होंगे। पल्टू कहां गया ?'

'बैठो, बस थोड़ी देर और बैठो। इतने दिन बाद तुम्हें देखा है, सच, मुझे बहुत ही खुशी हो रही है। तुम सब तो कुशलपूर्वक हो, सुनकर मेरा खून बढ़ गया है रे खुशी के मारे।'

'ले, पल्टू, कहां गया था ? यह क्या चाची ? आपने यह सब क्यों मंगवाया है ? बेकार ही इतनी मिठाई-विठाई मंगवायी है आपने। नहीं, मैं कुछ भी नहीं खाऊंगा इस वक्त।'

'अरे, कुछ नहीं है, बस जरा-सी मिठाई मंगवायी है। इतने दिनों बाद तुम्हारा

प्रणाम हासिल हुआ है मुझे, और इस खुशी के अवसर पर मैं तुम्हारा मुंह भी मीठा न कराऊं? जब गांव में थी तब, जब भी तुम्हारे घर जाती तो कितनी-कितनी चीजें खाकर आया करती, मुझे सब याद है।'

'अब उन बातों से—'

'पल्टू, तेरी थुथनी इस तरह कैसे कट गई रे? क्या हुआ?'

साधन दा का प्रश्न सुन पल्टू हक्का-बक्का रह गया। उसने एक बार साधन दा की ओर देखा, फिर अपनी मां की ओर देखने लगा। उसके बाद बहुत ही संकोच-सहित बोला, 'कल गिर पड़ा था।'

पल्टू की मां रो पड़ी। आंखों पर आंचल ढंकती हुई बोली, 'नहीं, गिरा नहीं है। मनुष्य कितना निष्ठुर हो सकता है, यह उसी का प्रमाण है। पास ही के एक मकान में पल्टू खेलने जाया करता है। वे लोग बड़े आदमी हैं। हम उनकी नजरों में कुछ भी नहीं हैं। फिर भी हमारे बच्चे भी तो और बच्चों की तरह आखिर बच्चे ही हैं। औरों की तरह हमें भी अपने बच्चों से उतनी ही ममता है। क्या हमें अपने बच्चों का दुख-दर्द नहीं सताता? उनके घर में वह आंख-मिचौली खेल रहा था। पल्टू के हाथ का धक्का लगकर उनकी एक कीमती फूल-दानी टूट गई। मान लो, इसने तोड़ ही दी, पर आखिर तो यह बच्चा ही है। इसने क्या जान-बूझकर तोड़ी थी? उनके लड़के से भी तो टूट सकती थी। इतनी-सी बात के लिये बच्चे को इस तरह मारना चाहिये था? तुम्हीं देखो, कितनी बुरी तरह मारा है! खून से भीगा कमीज लेकर जब यह घर लौटा तो मैं ही जानती हूं, मेरे दिल पर क्या गुजरी है....ठोंगे बेचकर कितने कष्ट से मैं इसकी पढ़ाई करवा रही हूं, इसी उम्मीद पर कि, बड़ा होकर यह मुझे सहारा देगा।'

◘

एक पांच साल का गोल-मटोल बच्चा उछलता-कूदता आता है और आकर कहता है, 'मां, तुमने साधन को पैसे दिये हैं, और मुझे नहीं दिये!'

'छीः छीः पल्टू, साधन नहीं कहते, बेटा। साधन भैया कहो। वह तुमसे बड़ा है न उम्र में!'

'हां-हां, साधन भैया को तुमने पैसे क्यों दिये जबकि, मुझे नहीं दिये!'

लम्बे बरामदे में बिछे कार्पेट पर एक आठ साल का लड़का बाबू बना सजा-संवरा बैठा है। वह बड़े ही मनोयोगपूर्वक खीर खाने में मगन है।

मां ने कहा, 'हां तुम्हें भी दूंगी, जा पहले मुंह-हाथ धोकर आ।'

पल्टू उछलता-कूदता हाथ-मुंह धोने चला गया। मां ने माधन से पूछा, 'क्यों बेटा, थोड़ी-सी और लेगा? खीर नहीं लेता तो दो लड्डू ही ले ले नारियल के। बड़ा ही राजा बेटा है! कहना मानता है मेरा।'

तब तक पल्टू भी वहां पहुंच गया था। वह भी माधन की तरह साफ-सुथरा हो आज्ञाकारी बालक की तरह बैठकर बोला, 'माधन भैया को जितने लड्डू दिये हैं उतने मुझे भी दो।'

'तूने सुबह भी खाये थे। अधिक खायेगा तो पेट दुखेगा।'

'कुछ भी हो, आज तो मैं जरूर लूंगा।'

'तो ले, जल्दी से खा ले। फिर दोनों भाई खेलना। ठीक है न? झगड़ा नहीं करोगे न माधन से?'

माधन ने चाट-पोंछकर खीर खा ली। पल्टू की मां ने अपने हाथ से उसका मुंह धोकर पोंछ दिया। पल्टू की नाक से पानी बह रहा था, वह भी साफ किया। उसके बाद पल्टू का भी मुंह धोकर बोली, 'जाओ, अब तुम लोग खेलने जाओ।'

उसी समय माधन के मां तथा पिताजी वहां आ पहुंचे। वे बगल के मकान में किसी से मिलने आये थे। माधन की मां ने माधन से कहा, 'बस, अब घर चलना पड़ेगा।'

पल्टू की मां ने कहा, 'इतनी जल्दी कैसे जायेगी! अभी तो आयी है। थोड़ी देर तो बैठ। इन लोगों को खेलने दे।'

माधन की मां ने पल्टू को गोद में उठाने की कोशिश की, पर वह किसी तरह भी उनकी गोद में नहीं गया। माधन की मां ने पल्टू की मां से कहा, 'मनक, तेरा बेटा कितना खूबसूरत लगता है! गहरे तथा घुंघराले बाल,कटोली आंखें—'

पल्टू की मां मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई बेटे की ओर देखती रही। माधन और पल्टू खेलने के लिये चले गये।

नदी पर ऊंचा पुल बना हुआ है। बरसात का मौसम है। थोड़ी ही देर पहले बरसात होकर चुकी है। आकाश, पृथ्वी तथा पेड़-पौधे सब धुले-धुले, साफ-

सुथरे-से लगते हैं। घास की नोक पर पानी की बून्दें टिकी हुई हैं। शाम के वक्त की हवा सरसराहट की आवाज कर रही है। और उस स्वच्छ वातावरण में खेल रहे हैं दो शिशु।

एक घेर-घुमेर कदम के पेड़ में गुच्छे-के-गुच्छे अनगिनत फूल खिले हुए थे, पर उन बच्चों के हाथ फूलों तक नहीं पहुंच रहे थे। बहुत उछलने पर भी फूल हाथ नहीं आये उनके।

पल्टू ने पूछा, 'साधन दा, तुम गाछ पर चढ़ सकते हो?'

साधन ने बहुत ही समझदार की तरह कहा 'बरसात के दिनों में गाछ पर नहीं चढ़ना चाहिए। इन दिनों गाछ में सांप रहते हैं। हरे रंग के सांप।'

'मैंने सांप देखा है। तुमने देखा है कभी?'

'बहुत, बहुत बार।'

'कदम फूल के पेड़ पर सांप नहीं रहते।'

'हां, तुझे अधिक मालूम है! तुझे पूछकर चढ़ेगा कदम के पेड़ पर सांप!'

'हां, मालूम तो है ही। मैं और दीदी एक दिन इस गाछ पर चढ़े थे।'

'जा झूठे!'

'सच। अच्छा फिर चढ़कर दिखा दूं?'

'अगर तू गाछ पर चढ़ेगा तो मैं चाची से कह दूंगा। गाछ भीगा हुआ है। चढ़ेगा तो फिसल जायेगा। आ, हम आंख-मिचौली खेलें।'

थोड़ी ही देर बाद पल्टू दौड़ा-दौड़ा अपनी मां के पास गया और नाक फुला-कर बोला, 'मां, साधन दा ने मुझे मारा है!'

साधन की मां ने कहा, 'उसने तुझे मारा? बुलाकर लाओ उसे। मैं उसे खूब डांटूंगी। आ बेटे, मुझे दिखा, कहां लगी है? मैं सहला देती हूं। थोड़ी लगी है या ज्यादा?'

पल्टू ने कहा, 'थोड़ी ही लगी है।'

पल्टू की मां ने पल्टू को डांटते हुए कहा, 'खेल-मेल में इस तरह शिकायत नहीं करते। जाओ। खेलते समय ऐसा ही होता है। जाओ, फिर से खेलो जाकर।'

आंख-मिचौली के खेल में साधन कभी भी पल्टू को पकड़ नहीं पाता। बहुत ही सतर्क होकर नदी के बांध पर चढ़कर झांका उसने पर वहां कोई भी नहीं था। पल्टू कहीं भी नजर नहीं आया।

डरते-डरते, कांपते गले से साधन ने चिल्लाकर पल्टू को आवाज दी, 'रे पल्टू! कहां गया? पल्टू—उ-उ-उ!'

पास से ही आवाज आई, 'ढूंढ लो।'

साधन ने गर्दन घुमाकर चारों ओर देख लिया पर पल्टू कहीं भी दिखाई नहीं दिया।

पल्टू कदम के गाछ पर फूलों के झुंड के भीतर छुपा बैठा था। वह खिल्ली उड़ाने के से अन्दाज में बोला, 'हार गये, साधन दा हार गये! मुझे नहीं ढूंढ सके। साधन दा मुझे पकड़ नहीं सकते।....'

■ ■ ■

क्या था विधाता के मन में

प्रमथनाथ बीसी

० ० ० ०

'क्या था विधाता के मन में ?' पर सच पूछा जाये तो 'क्या था विधाता के मन में' यह खुद विधाता को भी कहां मालूम था ? खुद विधाता के लिए भी हर बात, हर समय पहले से ही जान लेना भला संभव है ? और अच्छा भी है कि हर समय, हर बात पहले से उन्हें भी मालूम नहीं होती, नहीं तो इस रसीली दुनिया का बहुत-कुछ रस सूखकर यह विश्व-संसार भी गणित की पुस्तक की तरह नीरस हो जाता। तभी तो विधाता ने अपने और सृष्टि के बीच थोड़ा-सा परदा रखा है, यानी जानकर भी अनजान बना रहता है।

उत्तर-मेरु की उज्ज्वल हिमशिला-राज्य की एक दुग्ध-धवल हिमशिला शनैः-शनैः जब पुष्ट-मजबूत होकर भीषण रूप धारण कर रही थी तब स्कॉटलैण्ड के जहाज-निर्माण कारखाने में भी एक विशालकाय जहाज का निर्माण-कार्य चल रहा था, पर उसके भयावह दुःखद परिणाम का उस समय भला किसे पता था ! मगर विधाता को इस बात का आगे से पता भी था तो उन्होंने इस

रहस्य को अपने तक ही सीमित रखा । हल्का-सा आभास भी अगर दे देते तो लाखों लोगों की प्राण-रक्षा की जा सकती थी । हिमशिला के आघात से टाइटानिक जहाज के डूबने को एक आकस्मिक दुर्घटना कह सकते हैं । उस दुर्घटना को नियम न कहकर नियम का व्यतिक्रम कहें तो ज्यादा उचित होगा । फिर भी कहने का सारांश यह है कि नियम के व्यतिक्रम में ही नियम के अस्तित्व का प्रमाण निहित रहता है । उसी नियम के अनुसार मैं यहां एक घटना का विवरण देने को प्रस्तुत हुआ हूं जिसमें अप्रत्याशित संघर्ष के फल-स्वरूप एक पुरुष और एक नारी दोनों ही डूबते हैं । टाइटानिक में तो सिर्फ पुरुष ही डूबे थे ।

शहर के एक ही मोहल्ले के दो अलग-अलग मकानों में अनुपम और अनिन्दनीया रहते थे । वे एक-दूसरे को बिल्कुल नहीं जानते थे । जानते भी कैसे ? जानने का कोई कारण भी तो नहीं था । उनके रास्ते सिर्फ भिन्न ही नहीं एकदम विपरीत थे । फिर भी पता नहीं विधाता को क्या मंजूर था !

जिस समय अनुपम गीता पढ़ता उस वक्त अनिन्दनीया 'दि कैपिटल' पढ़ती । जब अनुपम की खद्दर की धोती छोटी होते-होते घुटनों तक आ पहुंची थी तब अनिन्दनीया की साड़ी प्रायः धूल बटोरती चलती । अनुपम का सिद्धांत था कि लज्जा निवारण के लिये जितना कपड़ा आवश्यक है उससे अधिक ग्रहण करना चोरी है जबकि अनिन्दनीया का ख्याल था कि खाने-पहनने में कंजूसी करना पागलपन है । अनुपम जब वन्देमातरम् की आवाज बुलन्द करता तब अनिन्द-नीया लालित्यपूर्ण वाणी से इन्कलाब जिन्दाबाद का नारा लगाती । अगर यहीं तक होता तो कोई खास बात नहीं थी क्योंकि ऐसा तो प्रायः हर घर में ही होता है । इतनी-सी बात की कहानी नहीं बन सकती, सिर्फ नीरस विवरण लिखा जा सकता है; लेकिन जब इसी नीरस और साधारण-से विवरण पर हठात् यह बात लागू हो गई, 'क्या था विधाता के मन में ?' तो यही विवरण एक कहानी बन गयी और इसके मवाद बन गये काव्य ।

ऐसे ही समय में राजनैतिक आन्दोलन के जोर से लोगों के दिलों में दबी आग बाहर निकल पड़ी और परिणामस्वरूप चारों ओर उसका ही तार और कोला-हल सुनाई पड़ने लगा । हां, एक बात बताना मैं भूल ही गया था । अनुपम जितना ही निष्ठावान कांग्रेसी था अनिन्दनीया उतनी ही निष्ठावान कम्युनिस्ट थी । पर मैं भूल गया तो क्या हुआ, मेरे पाठक अवश्य ही समझ गये होंगे ।

योंकि निष्ठा, पुरुषों का स्वभाव है, इसलिए वह बदल सकती है, की निष्ठा नहीं बदलती। यह उसकी प्रकृति होती है। चाहे पति हो, चाहे धर्म, चाहे राजनीति—नारियां अपनी निष्ठा की हर वस्तु को मरते दम तक मुट्ठी में बन्द रखना चाहती हैं। अनिन्दनीया का विश्वास है कि राजनीति ही वर्तमान युग का धर्म है जबकि अनुपम का कहना है कि धर्म ही वर्तमान युग की राजनीति है। दोनों के मत, पथ, आचार, आचरण तो ख़ैर अलग-अलग थे ही, राजनीति को लेकर तो जमीन-आसमान का फर्क था। सिर्फ यही क्यों, चेहरे और आकार-प्रकार में भी दोनों में कोई साम्य नहीं था। अनुपम स्वस्थ, सुन्दर, लम्बा, सुपुरुष दिखाई पड़ता था। रंग भी गोरा था। दस व्यक्तियों के बीच खड़ा होने पर भी सबसे अलग दिखाई पड़ता था। और अनिन्दनीया ? छरहरा शरीर, आंख और चेहरे के भाव में तीखी धार जैसा भाव मानो ईश्वर तलवार गढ़ने बैठा और बना बैठा तनु-लता। और रंग ? केले के वृक्ष के गर्भ से जब पहले पत्ते की कोंपल थोड़ी-सी बाहर झांकती है, उस समय उसका जैसा रंग होता है, ठीक वैसा ही रंग था अनिन्दनीया का। रंग के साथ उसके नाम का कोई मेल नहीं था। अरुणोदय की प्रथम किरण के कुशल हाथों से बुनी सुन्दर बनावट जैसी थी वह। उसके माता-पिता के पास कितने ही पात्र शादी की इच्छा लेकर आने पर लड़की का एक ही जवाब था कि वह शादी नहीं करेगी।

विवाह सम्बन्धी समस्या पर शायद कुछ और आगे तक खींच-तान होती पर ऐसे ही वक्त शहर में आन्दोलन छिड़ गया। अनुपम तथा अनिन्दनीया के नेतृत्व में कांग्रेसी और कम्युनिस्ट दल आमने-सामने आ खड़े हुए। वन्देमातरम् और इन्कलाब-जिन्दाबाद के नारे एक-दूसरे से प्रतियोगिता कर रहे थे। दोनों ही दलों के लोगों के हाथों में पताकाएं एवं अनेक तरह के आकर्षक और उत्तेजक नारों से सजे फेस्टून थे जो संभवतः सम्बन्धित नेताओं के समयोचित निर्देशानुसार लिखे गये थे। अब जबकि दो परस्पर विरोधी दल आमने-साम आ डटे थे तो कुछ अप्रत्याशित घटित होना अवश्यम्भावी था ही। यह बा न्यूटन सम्बन्धी किसी नियम के अन्तर्गत आती है कि नहीं यह तो पता न पर राजनैतिक आंदोलन का ध्रुव नियम है यह। मुहूर्त भर में फेस्टून मान-दण्ड राज-दण्ड के रूप में प्रगट हुआ। तभी समझ में आया कि फे पर कपड़ा टांगना तो सिर्फ एक औपचारिकता थी। एक डण्डा अनिन्द

के सिर की ओर बढ़ते ही, 'है, है, यह क्या करते हो ? हमलोग अहिंसावादी हैं' कहता हुआ अनुपम आगे बढ़ा। पर उसके मुंह की बात पूरी नहीं हो पाई, क्योंकि अहिंसक आघात बड़ा ही हिंसक होता है शायद इसी के प्रमाणस्वरूप सिर पर गहरी चोट खाकर अनुपम धराशायी हो गया और साथ-ही-साथ बेहोश भी हो गया।

घटना को विचित्र रूप से पलटते देख दोनों ही दल स्तब्ध हो गये। उस स्तब्धता को भग्न करके सिर्फ अनिन्दनीया के मुंह से धिक्कार गूंजी, 'क्या यही तुम्हारी अहिंसा है ?'

कांग्रेसियों के नेक्स्ट इन कमाण्ड ने कहा, 'अहिंसा तत्व को समझना तुम्हारा काम नहीं है। शत्रु के प्रति अहिंसक होने का हमें हुक्म मिला है, किन्तु अनुपम दा तो हमारे शत्रु हैं नहीं।'

पर उस वक्त अहिंसा तत्व पर विचार करने लायक मन:स्थिति न होने के कारण दोनों दल मिलकर अनुपम को साथ ले गये। साथ गई थी अनिन्दनीया। पता नहीं, 'क्या था विधाता के मन में!'

दूसरे दिन अनिन्दनीया अनुपम को देखने अस्पताल गई तो उसने पाया कि सिर पर पट्टी बांधे अनुपम पलंग पर पड़ा है। वह थोड़े-से फूल तथा फल ले गई थी। उनको पास की टेबिल पर रखकर वहीं खड़ी रही। थोड़ी देर बाद अनुपम ने आंखें खोलकर उसकी तरफ देखा, पर उसको पहचान नहीं पाया। रोगी ने आंखें वापस मूंद लीं। आखिर जब मिलने का समय खत्म होने की घण्टी बजी तब एक दीर्घ निःश्वास छोड़ वह चली आयी।

■

अगले दिन अनिन्दनीया फूल तथा फल ले उसी वक्त फिर गयी। आज रोगी की हालत में काफी सुधार नजर आया। वह उधर ही देख रहा था। अनिन्दनीया को देखते ही पहचान गया और पूछा, 'तो क्या आप कल भी आई थी ? ये फूल और फल आप ही रख गई थी ?' अनिन्दनीया के मौन को स्वीकारोक्ति समझकर अनुपम ने कहा, 'पर आप सफेद फूल क्यों लाईं ? अपने राजनैतिक सिद्धान्त के अनुसार तो आपको लाल फूल लेकर आना चाहिए।' फिर उसके हाथ की तरफ देखकर बोला, 'ओह, आप तो आज भी लाई हैं! लेकिन क्यों ? यह सब क्या विजयी के अहङ्कार-चिन्ह है ?'

अनिन्दनीया ने मुस्कराकर कहा, 'पहले आप ठीक तो हो लीजिये, उसके बाद इस मसले पर विचार किया जायेगा।'

'मेरा स्वस्थ होना तो, अगर मैं गलत नहीं कहता, आप लोगों की आकांक्षा होनी नहीं चाहिये। जिसने लाठी मारी थी वह.......'

'आपको गलतफहमी हुई है, अनुपम बाबू। लाठी तो आपके ही कांग्रेसी स्वयं-सेवक ने मारी थी, और मुझे मारी थी। आपने खामखाह अपना सिर बीच में देकर यह अनहोनी कर डाली। वह लाठी अगर मेरे सिर पर पड़ी होती तो मैं खत्म ही हो जाती। पर कांग्रेसी लोगों का सिर बहुत ठोस होता है न, इसी-लिए इस बार आप बच गये।'

जवाब में अनुपम कुछ कहने जा रहा था कि लड़की ने बीच में ही रोककर कहा, 'आज के लिए इतनी बातें काफी हैं। हां, आपका मन नहीं भरा हो तो कल सुना लीजियेगा।'

'तो आप कल भी आयेंगी? लेकिन क्यों? मुझ पर जासूसी करने का तथा मुझे नजरों के सामने रखने का भार शायद आपको ही सौंपा गया है!'

लड़की ने हंसकर कहा, 'हां, मुझे भी यह नजरों के सामने रखनेवाला मामला ही लगता है।'

'यह क्या! आप चल दीं?'

'हां। घण्टी बज चुकी है। जाने का समय हो गया है।'

उसको जाते देख अनुपम ने कहा, 'अगर मैं आज की ही रात यहां से भाग जाऊं, तो?'

'अगर ऐसा ही हुआ तो भाग जाने के बाद विचार किया जायगा। आज तो मैं चली।'

□

दूसरे दिन फिर ठीक समय पर लड़की आ उपस्थित हुई। आज उसके हाथ में फूल और फल के अलावा सन्देश भी थे। उसने देखा कि अनुपम के सिर की बैण्डेज खोल दी गई है तथा बाल बहुत ही छोटे-छोटे काट दिये गये हैं जिसके फलस्वरूप वह बहुत ही कृश-काय दीख रहा है। लड़की के हृदय को आघात पहुंचा उसका चेहरा देखकर। बोली, 'क्यों बेकार ही मुझे बचाने के लिए अपना सिर आगे किया आपने?'

'अगर सच सुनना चाहती हो तो नवकुमार की भाषा में जवाब देना पड़ेगा। बहुत-से लोग दूसरों का दायित्व निभाने के लिए ही जन्म लेते हैं।'

अनिन्दनीया ने कहा, 'नवकुमार की स्वीकारोक्ति का शेष कथन क्यों गोल कर गये ? कह दीजिये न, तुम भले ही अधम हो, लेकिन मैं महान क्यों न बनूं ?'

इस बार अनुपम ने कहा, 'एक तो आने का कष्ट वहन करती ही हैं आप, ऊपर से यह खर्च क्यों ?'

'जब खर्च हो ही चुका है तो फिर खाइये भी।' कहकर एक सन्देश अनुपम के हाथ पर रख दिया।

अनुपम ने सन्देश खाते-खाते कहा, 'तो आप क्या सिर्फ दृष्टि-भोग ही करेंगी ?'

अनिन्दनीया ने हंसकर कहा, 'भोग की तो शुरूआत है, पता नहीं मेरी किस्मत में अभी और क्या-क्या भोगना लिखा है!'

विदा लेते वक्त लड़की के हाथ में गुलाब का फूल देते हुए अनुपम ने कहा, 'अस्पताल के बगीचे से आपके लिए ही लाया था।'

'बेकार ही क्यों कष्ट किया आपने ?'

'आप तो रोज ही कष्ट करती हैं, एक दिन मैंने भी किया समझिये। कष्ट के ऋण का शोध कष्ट से ही होता है।'

लड़की ने कहा, 'समझी। बदला चुकाकर सारे सम्बन्ध ही खत्म करना चाहते हैं!'

'सम्बन्धों की तो यह शुरूआत हुई है, भई। बाद में जब फिर दोनों दल आमने-सामने होंगे तब इससे भी जोर से लाठी मारकर भूल का संशोधन कर लेना।' अनुपम ने कहा।

'मेरा खयाल है, वह शक्ति तो आपकी अहिंसक लाठी में ही अधिक है।'

'अच्छा बताइये, आपको किस नाम से पुकारूं ? अनिन्दनीया नाम तो बहुत ही भारी-भरकम है, अत इसको ढोने के लिए मजदूर की आवश्यकता पड़ेगी।'

'तो ठीक है, एक अक्षर कम करके आप मुझे निन्दनीया कह सकते हैं। तब तो थोड़ा हल्का हो जायेगा न ?'

'फिर भी खास हल्का नहीं हुआ। मैं सोचता हू, थोड़ा और छोटा करके नि नाम से ही क्यों न पुकारूं ?'

लड़की ने जवाब दिया, 'इस नामकरण के कारण लोग आपके सिवाय और किसी की निन्दा नहीं करेंगे। फिर भी आपको उसी में खुशी हो तो आप उसी नाम से पुकारिये। अच्छा, तो आज मैं चली।'

□

अगले दिन उसी समय आकर अनिन्दनीया ने देखा कि अनुपम जाने के लिये तैयार बैठा है।

'आज सुबह दस बजे ही मेरी छुट्टी हो गयी थी। डॉक्टर से कहकर कुछ घण्टा और रहने की इजाजत मांगी है।'

लड़की ने कहा, 'यह तो मैं आज नई बात सुन रही हूं कि अस्पताल में भी कोई रोगी खुशी-खुशी अधिक रहना चाहता है।'

उसने अतिरिक्त समय मांगकर अस्पताल में क्यों रहना चाहा, यह बात अनिन्दनीया को न समझते देख अनुपम को थोड़ा दुःख हुआ। उसके चेहरे का म्लान भाव अनिन्दनीया से छिपा नहीं रहा। मन-ही-मन वह खुश हुई। लड़कियां समझती सब कुछ हैं, सिर्फ न समझने का ढोंग करती हैं।

'अब क्या यहीं खड़े रहेंगे? जब छुट्टी मिल ही गयी है तो चलिये, आपको पहुंचा आऊं। मेरे पास गाड़ी है।'

'घर की गाड़ी है शायद? सचमुच, घर की गाड़ी बिना कम्युनिष्ट होने का सुख नही है!'

लड़की ने उस बात का कोई जवाब न देकर पूछा, 'आपलोग भी कार में बैठते तो हैं न? फिर आपने ऐसी विचित्र बात क्यों पूछी, बताइये तो? वैसे मैंने सुना है, बहुतों की धारणा है कि बैलगाड़ी के अलावा और किसी गाड़ी में बैठने से कांग्रेसी लोग जाति-बाहर समझे जाते हैं।'

गाड़ी दौड़ी जा रही थी। अचानक अनुपम ने पूछा, 'हमें जाना है मध्य कलकत्ता। आप गंगा-किनारे क्यों ले आईं मुझे? गंगा-प्राप्ति करवाने का इरादा तो नहीं?'

'अगर गंगा की हवा खाने से ही गंगा-प्राप्ति होती है तो आप यही समझ लीजिये।'

'कई दिनों से तो आप संदेश खिला रही हैं, अब भला हवा खाने की जगह बची होगी मेरे पेट में?'

'तुमने तो सन्देश खाने के लिए आपने एक बार भी नहीं कहा, अतः सिर्फ हवा खाने के अलावा मेरे पास और चारा ही क्या है?' अनिन्दनीता ने जवाब दिया।

कुछ कहने-सुनने को न होने पर भी जब आदमी बोले ही जाता है तब समझ लेना चाहिये कि उसकी अवस्था स्वाभाविक नहीं है। काम की बात हो तो दो मिनट में पूरी हो जाती है पर बेकार बातें द्रौपदी के चीर की तरह है। उन्हीं बेकार बातों में मुग्ध होकर पन्द्रह मिनट का रास्ता जब डेढ़ घण्टे में तय करके अनुपम के घर के दरवाजे के सामने गाड़ी पहुंची तब शाम प्रायः पूरी तरह झुक आयी थी।

अनुपम ने कहा, 'भीतर चलिये।'

'नहीं। आज नहीं। रात हो गई है।'

'लगता है, फिर से सिर फुड़वाकर हॉस्पिटल में भर्ती होना पड़ेगा। अन्यथा तो अब आपसे भेंट होनी सम्भव नहीं।'

'मैं क्या फ्लोरेन्स नाइटेंगल हूं जो अस्पताल में घूम-घूमकर रोगी की सेवा करती फिरती हूं?'

अनुपम ने पूछा, 'अब कब मिलना होगा?'

'जल्दी तो नहीं।' कहकर अनिन्दनीता गाड़ी में जा बैठी और गाड़ी अनुपम की आंखों से दूर हो गई। जितनी देर पीछे की लाल बत्तियां दिखाई पड़ती रहीं अनुपम एकटक उधर ही देखता रहा।

'जल्दी तो नहीं' शब्द कांटे की तरह अनुपम के दिमाग में सारी रात चुभता रहा। स्वप्न एवं जागरण के बीच की स्थिति में घूमता रहा वह।

दो दिन पहले जो अपरिचित थी या फिर शत्रु-पक्ष की थी, उसी के लिए इतनी तड़प क्यों? लगता था, उसके वे छोटे-छोटे तीन शब्द छोटी छुरी के घाव की तरह उसके हृदय में पीड़ा उत्पन्न कर रहे थे।

संसार में दुःख-सुख दोनों ही अवश्यम्भावी होते हैं—इस पुरातन उक्ति की नवीन व्याख्या तब हुई जब दूसरे दिन शाम को अनिन्दनीता की गाड़ी अनुपम के घर के सामने आ खड़ी हुई। दार्शनिकों का कहना है कि 'समय' शब्द स्थिति-सापेक्ष है। शीघ्र शब्द की स्थिति-सापेक्षता अपरिसीम है। सनन्द मुनि विश्वदर्शन

को यह कहकर गये थे कि शीघ्र लौटूंगा, और फिर लौटे ही नहीं। इधर अनिन्दनीया कह गई थी कि जल्दी तो नहीं, जबकि चौबीस घण्टे भी पूरे नहीं हुए। शब्द-शास्त्रों की महिमा भी अपार है।

अनिन्दनीया को गाड़ी से उतारकर घर के भीतर ले जाते समय अनुपम सोच रहा था कि कल की रात उसने बेकार ही दुःस्वप्न में काटी थी। जल्दी तो नहीं का अर्थ उसने दो-चार साल से ही क्यों लगाया? दो और चार को पास-पास लिखने से चौबीस घण्टे भी तो हो सकते थे। और यही हुआ भी।

अनुपम ने अनिन्दनीया का परिचय अपनी मां से कराया। बोला, 'मां, यही लड़की है जो अस्पताल जाकर मेरी देख-भाल किया करती थी। मेरी बहुत सम्भाल की है इसने।'

मां लड़की को देखकर कितनी मुग्ध हुईं यह तो बाद में पता चला। दो दिन बाद ही उन्होंने लड़के से कहा, 'बेटे, लड़की तो बहुत अच्छी है। तुम्हारी शादी ऐसी ही लड़की से हो तो बहुत अच्छा रहे।' विवाह-योग्य कन्या की पुत्र-वधू के रूप में कल्पना करना मांओं की सनक होती है।

'वह लड़की शादी नहीं करेगी, मां। इस ओर से तुम निश्चिन्त रहो।'

मां ने कहा, 'चल पगले! साठ बरस की मैं होने को आई। लड़कियां तो बहुत देखीं पर ऐसी लड़की नहीं देखी जिसकी शादी करने की इच्छा न हो। सीताजी ने धनुष-भंग का प्रण किया था, फिर भी उनकी शादी अटकी नहीं।'

□

एक दिन अनिन्दनीया ने अनुपम की मां से कहा, 'कई दिन हॉस्पिटल में रहने से ये कमज़ोर हो गये हैं। मैं जरा इनको गंगा-किनारे घुमा लाऊं।' उसके इस कथन को अनुमति चाहना नहीं कह सकते। अनुमति, प्रार्थना और इच्छा ज्ञापन के बीच की स्थिति कह सकते हैं।

प्रिन्सेप घाट के पास लगे हरे मैदान में दोनों बहुत देर तक घूमते रहे। फिर गंगा-किनारे बनी बेंच पर दोनों ने पास-पास बैठकर मूंगफली खाई। फिर तो रोज की उनकी यही रूटीन हो गयी। एक दिन प्रिन्सेप घाट के पास बैठे अनुपम और अनिन्दनीया बातें कर रहे थे कि अनुपम ने कहा, 'निन्दा, मैं मन-ही-मन बहुत आत्मग्लानि महसूस करता हूं। देश में राजनैतिक आन्दोलन चल रहे हैं और मैं बेकार वक्त बर्बाद करता हूं।'

लड़की ने कहा, 'क्या करें पम, तुम्हारा शरीर तो अभी भी काम लायक नहीं हुआ है।'

अनुपम और अनिन्दनीया दोनों के नाम संक्षिप्त होकर जब पम और निन्दा में परिणत हो गये तथा आप सम्बोधन तुम पर आ गया, तो समझ लेना चाहिये कि इस बीच बहुत-कुछ घट चुका है जो बाहरी लोगों को मालूम नहीं है। संसार की गति इसी तरह बहुत-से मध्यवर्ती अंशों को बाद देती हुई चला करती है।

कुछ देर चुप रहकर अनुपम ने कहा, 'बस थोड़ा-सा और आराम कर लेता हूं। शरीर थोड़ा ठीक होते ही फिर से राजनीति में भाग लूंगा। धर्म ही इस युग की राजनीति है।'

लड़की ने कहा, 'ठीक ही है। तुम ठीक हो जाओ तो फिर मैं भी राजनीति में योग दूं। राजनीति ही इस युग का धर्म है।'

'तब फिर क्या हमारी मुलाकातें नहीं होंगी?'

लड़की ने जवाब दिया, 'बल्कि और जल्दी-जल्दी होंगी। बिल्कुल धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र में।'

अनुपम ने कहा, 'हो गया बेड़ा गर्क! वह तो एकदम गीता जैसी स्थिति होगी।'

'न हो तो तुम मार्क्सवाद अपना लो, मुझे आपत्ति नहीं है, लेकिन भविष्य में अपने दोनों दलों का सामना होने पर दूसरे का सिर बचाने के लिये अपना सिर आगे न बढ़ा देना।'

अनुपम ने कहा, 'वादा नहीं कर सकता। सारी बात इस पर निर्भर करती है कि सिर किसका है?'

इसी तरह असंगत असम्बद्ध बातों की तरंगें सामने बहती गंगा की तरह प्रवाहित होती रहती थीं और उधर अन्धकार की तूलिका सहस्र दीपालोकित कलकत्ता शहर के आकाश को काला करने की कोशिश करती रहती थी।

इन कुछ ही दिनों में अनुपम की धोती की किनार घुटनों से नीचे उतरती-उतरती प्रायः टखनों को छूने लगी थी तथा खद्दर का सूत महीन होते-होते इतना सूक्ष्म हो गया था कि मिल का ढ़ाका-जैसा लगता था। इधर

की साड़ी रंगीन हो गयी थी तथा उसमें वैसाखी गुल्म के फूल खिलने लगे थे। अनुपम के चरखे पर मकड़ी ने जाला बुन रखा था तथा गीता पर इतनी धूल जम गई थी कि एक फसल तैयार की जा सकती थी। अनिन्दनीया की मार्क्सवाद सम्बन्धी किताबें भी तकिये के नीचे पड़ी-पड़ी उसकी ऊंचाई कुछ और बढ़ाने का गौरव प्राप्त कर रही थीं। अनिन्दनीया के साथ पुस्तकों का अब यही सम्बन्ध रह गया था। अनुपम सोचता कि उसके कर्तव्य में त्रुटि हो रही है और पार्टी के लोग पता नहीं क्या सोच रहे होंगे; उधर अनिन्दनीया को लोग बुलाने जाते तो जवाब मिलता कि सिर्फ जुलूसबाजी करना ही राजनीति नहीं है। घर जाकर इस विषय की किताबों का भली प्रकार अध्ययन करो। पर सच्ची बात यह थी कि दोनों पक्षों के ऊर्ध्व में एक तृतीय पक्ष भी था। और वह था शायद देवता। राजनीति अगर विशेष युग की होती है तो वह देवता निर्विशेष युग का होता है। उनके लिये चाहे शत्रु-पक्ष हो या मित्र-पक्ष, दोनों पक्षों के आमने-सामने आने पर वे बहुत ही कौतुक महसूस करते हैं, और फिर एक छोटा-सा बाण छोड़ते हैं। कहना उचित होगा कि वही देवता अनुपम और अनिन्दनीया के सिर पर सवार हो गया था। उन्हीं की महिमा का फल है कि अनुपम तो पम हो गया तथा अनिन्दनीया निन्दा बन गई और उन दोनों के परस्पर आप सम्बोधन तुम पर आकर ठहर गये। इतनी-सी बात शायद वे दोनों नहीं जानते या फिर जानकर भी अनजान बनते हैं। मानसिक आत्म-प्रवंचना करने की शक्ति भी अपरिसीम होती है।

□

एक दिन शाम के वक्त निर्दिष्ट समय अनुपम के दरवाजे पर अनिन्दनीया की गाड़ी नहीं पहुंचने पर वह बहुत ही उद्विग्न हो उठा। आज इतनी देर क्यों हो रही है? मोहल्ले के लोगों ने गाड़ी की उपस्थिति देखकर घड़ी का टाइम मिलाना शुरू कर दिया था। ऐसी हालत में उद्विग्न न होना ही अस्वाभाविक होता। वह अधिक सब्र नहीं कर सका। बाहर निकल सीधा कम्युनिस्ट पार्टी के ऑफिस जा पहुंचा। उसे वहां देखकर कामरेड-गण घोर अचरज में डूब गये। एक ने कहा भी कि, 'आप……और यहां?' पर उसकी बात का जवाब देना बेकार समझ अनुपम ने पूछा, 'अनिन्दनीया कहां है?' जवाब मिला कि वह आजकल यहां अधिक नहीं आती है। शायद घर पर ही हो। अपने अचानक इस तरह यहां आने की व्याख्या न कर वह सीधा अनिन्दनीया के घर की ओर चल पड़ा। वहां पहुंच बिना भूमिका के घर में प्रवेश करते ही देखा

कि दरवाजे की ओर पीठ किये बहुत तन्मयता के साथ अनिन्दनीया कुछ कर रही है। दबे कदमों से ठीक उसके पीछे पहुंचने पर अनुपम ने देखा कि अनिन्दनीया चित्र बना रही है, और वह चित्र उसका यानी अनुपम का ही है। अनिन्दनीया को पता ही नही चला उसके आने का। वह तो बस चित्र अंकित करने में ही मग्न थी। साधारणतः चित्र बनाते वक्त मॉडल सामने रखा जाता है पर यहा मॉडल पीछे था। लेकिन जब मॉडल हृदय में ही बसा हुआ हो तो सामने रहे या पीछे, एक ही बात है। इसी तरह पता नही कितनी देर और गुजरती कि अनिन्दनीया की छोटी बहन ने कमरे मे प्रवेश किया और अनुपम को यहां देखते ही खुशी के मारे लगभग चीखते हुए बोल उठी, 'देखो न दीदी, कौन आया है ?' अनिन्दनीया ने पीछे मुडकर देखा और देखते ही चित्र को झटपट आंचल मे छिपा लिया। फिर बात बनाने के लिये योंही कहने लगी, 'बहुत दिन हो गये चित्र बनाना छोडे, इसीलिये आज देख रही थी कि मेरा हाथ ठीक चल रहा है कि नही।'

अनुपम उक्त व्याख्या की उपेक्षा कर बोला, 'आज आयी क्यों नही ?'

'चित्र बनाने जो बैठी तो समय का होश ही नही रहा।'

'अब तो होश मे आ गयी हो। चलो, तुमसे जरूरी काम है।'

दोनों गंगा-किनारे निर्दिष्ट स्थान पर आकर बैठे। सारे दुविधा-बन्धनो को तोड़ अनुपम ने कहा, 'निन्दा, मैं तुम्हें प्यार करता हूं।'

अनुपम अगर निपट अबोध नही होता तो समझ सकता था कि इस बात को अनिन्दनीया बहुत पहले ही समझ चुकी थी। सिर्फ अनिन्दनीया ही क्यो, पार्टी व मोहल्ले के लोग भी इस बात से अनभिज्ञ नही थे। अनभिज्ञ था तो सिर्फ नैष्ठिक कांग्रेस-कर्मी अनुपम सरकार ही था।

स्वतःसिद्ध बात का क्या जवाब दे वह जब अनिन्दनीया नहीं समझ पायी तब बोली, 'गंगा की धारा में आज इतना शोर क्यों हो रहा है ? शायद इस वक्त ज्वार आया हुआ है !'

किस प्रत्याशा का कैसा उत्तर !

इस बार अनुपम ने कहा, 'निन्दा, तुम मुझसे शादी करोगी ?'

आज अनुपम बिल्कुल विनीत हो उठा था। उसकी बात [illegible] [illegible] ही न हो इस तरह से अनिन्दनीया फिर बोली, 'समुद्र कितना दूर है, [illegible]

उसके ज्वार के आघात से नद-नदियों का पानी उत्तेजित हो उठता है। यह बहुत ही अचरज की बात है न!'

अब अनुपम एकदम क्षुब्ध होकर बोला, 'भौगोलिक समस्या को इस वक्त छोड़ो और मेरी बात का जवाब दो।'

अनिन्दनीया खुद में ही मगन बोले जा रही थी, 'कहां तो लाखों मील की दूरी पर चांद, फिर भी किस अदृष्य आकर्षण शक्ति के वशीभूत हो समुद्र का पानी ज्वार-भाटा के रूप में सिर धुनता है। यह क्या अचरज की बात नहीं है, अनुपम बाबू?'

इतने दिनों बाद, इतना कुछ अघटनीय घट जाने के बाद, पम से फिर अनुपम बाबू हो गया वह! अनुपम क्षुब्ध हो उठा। बोला, 'समझ गया। अब घर चलो। सभी लड़कियां एक जैसी ही होती हैं।'

अनिन्दनीया ने निर्विकार भाव से कहा, 'यह सुनकर सचमुच मेरी चिन्ता ही मिटा दी तुमने। अब किसी भी एक लड़की से शादी कर लो, क्योंकि सभी लड़कियां तो एक समान होती हैं।'

मोटर में बैठने के बाद अनुपम ने एक भी बात नहीं की। बाहर अंधेरे में प्रकृति-शोभा देखने की कोशिश करता रहा। लड़कियां छोटी रहती हैं तब वे गुड़िया से खेलती हैं। जब बड़ी हो जाती हैं तब अबोध, सीधे, सरल पुरुषों से खेलती हैं। उस समय उनकी यह हालत हो जाती है कि आंख होते हुए भी देख नहीं सकतीं, कान रहते सुन नहीं सकतीं, हां, मुंह से बात अवश्य कर सकती हैं लेकिन वे होती हैं सिर्फ 'अर्थहीन बातें।'

'पम, तुम्हारे प्रस्ताव पर मैं राजी हूं, लेकिन मैं राजनीति को नहीं छोड़ सकती। राजनीति ही इस युग का धर्म है।'

'राजनीति छोड़ने को तुम्हें कौन कह रहा है, निन्दा? मैं ही क्या राजनीति छोड़ दूंगा? धर्म ही इस युग की राजनीति है।'

'एक बात और भी है, तुमलोगों की गीता मैं नहीं पढ़ सकूंगी।'

'क्यों? बहुत छोटी-सी किताब है। सिर्फ सात सौ श्लोक ही तो हैं।'

'हां, आकार में छोटी अवश्य है, पर प्रकार में नहीं। उसका टीका-भाष्य बारह हाथ की कांकुड़ बेल के तेरह हाथ लम्बे बीज की तरह है।'

'तुम गीता पर टीका-टिप्पणी कर रहे हो तो मुझे भी कहना पड़ेगा निन्दा, कि तुम्हारे दि कैपिटल ग्रन्थ के पास तो कुछ भी नहीं है; प्रत्येक पाठक अपनी इच्छानुसार उसका अर्थ-कुअर्थ लगाता है।'

'खैर, गीता की बात जाने भी दो लेकिन पार्टी किस तरह छोड़ सकती हूं ?'

'तो ठीक है। तुम अपनी पार्टी में रहो, मैं अपनी पार्टी में रहता हूं। इससे शादी में कहा बाधा पड़ती है ?'

'असम्भव।' कहकर अनिन्दनीया गम्भीर हो गई।

तब फिर ?

'तब फिर और क्या कहूं, अनिन्दनीया ? शैव और शाक्त में क्या विवाह नहीं होते ? हिन्दू-क्रिस्तानों में क्या सिविल मैरिज नहीं होती ? फिर अपनी ही शादी असम्भव क्यों होने लगी ?'

अनिन्दनीया ने कहा, 'यह तुलना चलनेवाली नहीं है। शैव और शाक्त दोनों ही हिन्दू होते हैं। हिन्दू और क्रिस्तान दोनों ही धर्म को मानते हैं।'

'तुम भी तो धर्म को मानती हो। फर्क सिर्फ इतना है कि, तुम राजनीति को इस युग का धर्म मानती हो।'

'असली बात क्या है, पता है तुम्हें ? तुम हो इस युग के व्यक्ति, जबकि मैं भावी युग की हूं।'

अनुपम ने हंसकर उत्तर दिया, 'तो फिर वर्तमान का क्या होगा ?'

'यह मुझे पता नहीं है। लेकिन इतना जानती हूं कि इस तरह विवाह करके हम दोनों ही सुखी नहीं होंगे।'

'अच्छा निन्दा, तुम बता सकती हो कि शादी करके कभी कोई सुखी हुआ है ?'

अनिन्दनीया ने कहा, 'हां, बहुत से।'

'जिस काम को करने से सभी ठगे जाते हैं, उसकी अभिज्ञता क्या कोई कभी ठीक से बताता है ? फिर भी सुनो, मैं बताता हूं, विवाहित जीवन में सुख नहीं है तो अविवाहित जीवन में भी शान्ति नहीं है।'

'वृथा तर्क करने से लाभ क्या है ? हमारी शादी नहीं हो सकती।'

सहारे अपने मान-सम्मान की रक्षा करते हुए शादी-समारोह में उपस्थित होने को उद्यत हो रहे थे।

बस अब मेरी कहानी खत्म होने को है। इतनी बड़ी दुनिया में ऐसा तो होता ही रहता है। किसी घटना के प्रभाव से कितने ही आयोजन बन जाते हैं तो फिर खत्म भी हो जाते हैं। दिन भर की मेहनत के बाद जो बारूद यानी अनार तैयार होती है वह जरा-सी आग दिखाते ही अग्निफुहार छोड़ती हुई निमिष भर में खत्म हो जाती है।

■

दूसरे दिन प्रद्युम्न और अनिन्दनीया पी. एस. पी. के ऑफिस पहुँचे और उसके सदस्य बन गये तथा उसके अगले ही दिन मैरिज रजिस्ट्रार के ऑफिस में पहुँचकर उन्होंने शादी के अनुबन्ध पर हस्ताक्षर कर दिये। शायद यह कहने की जरूरत नहीं कि उसी दिन विधिवत वैदिक रीति से भी उनकी शादी हो गई।

इस कांड से कांग्रेस और कम्युनिस्ट दोनों पार्टियों के ही सदस्य स्तम्भित रह गये। इतने दिनों के राजनैतिक जीवन का अन्त आखिर इस कांड में हुआ! इस उपलक्ष में उन्होंने मिला-जुला जुलूस निकालकर उनके घर के सामने नारे लगाये और उन्हें धिक्कार दे आये। फिर भी खुशी की बात यह थी कि जुलूस के कारण उस दिन ट्राम-बस बन्द नहीं हुई, क्योंकि उनके घर के रास्ते में न ट्राम चलती थी, न बस। अगर प्रद्युम्न और अनिन्दनीया को यह मालूम होता कि 'रस्सा या विधाता के मन में' तो वे पहले से ही सावधान रहते।

■ ■ ■

उन्होंने तो इस तरह अपना सिद्धान्त स्थिर कर लिया, लेकिन सबसे शक्तिशाली सिद्धान्त तो देवताओं के हाथ में था। उनके तेज बाण नित्य-प्रति ही उनको लक्ष्य करके चला करते।

◘

तीन दिन बाद अनिन्दनीया ने कहा, 'मैंने एक उपाय सोचा है। अब तुम निश्चित हो जाओ। कोई अड़चन नहीं होगी अब।'

इस बार अनुपम की बारी थी संक्षिप्त भाषण देने की। उसने कहा, 'असंभव।'

◘

तीन दिन और बीते। उनकी मुलाकात रोज ही होती थी। कई बार तो एक बार से अधिक भी हो जाती। इस बार अनुपम ने कहा, 'मैंने एक उपाय सोचा है, तुम भी विचार कर देखो। जब हम राजनीति को छोड़कर रह नहीं सकते तो एक काम क्यों न करें। तुम्हारी पार्टी और मेरी पार्टी दोनों को ही जाने दें। क्यों न हम दोनों एक तीसरी पार्टी में शामिल हो जायें। फिर तो कोई अड़चन नहीं आयेगी।'

'अच्छा, मैं सोचूंगी।' अनिन्दनीया ने कहा।

◘

तीन दिन बाद फिर दोनों में प्रसंग उठा। अनिन्दनीया से अनुपम ने पूछा कि उसने क्या सोचा है? अनिन्दनीया ने कहा, 'तीसरी ऐसी कौन-सी पार्टी है, मुझे तो नजर नहीं आ रही है।'

'मुझे आ रही है। जिनकी राजनीति हम दोनों के बीच की है, चलो उसी में हम सहयोग दें।'

'ऐसी कौन-सी पार्टी है?'

'क्यों? पी. एस. पी. है न। वे लोग कांग्रेस तथा कम्युनिस्ट दोनों दलों से बराबर दूरी रखते हैं।'

ये अबोध नर-नारी अगर अपने होशो-हवास में होते तो समझते कि उनकी इस युक्ति में कितना बड़ा झूठ तथा धोखा था। लेकिन उस अदृश्य देवता के जादू-प्रभाव से ही उन पर ऐसा मुग्ध-भाव छाया हुआ था कि एक धोखे के

सहारे अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करते हुए शादी-समारोह में उपस्थित होने को उदग्रीव हो रहे थे।

बस अब मेरी कहानी खत्म होने को है। इतनी बड़ी दुनिया में ऐसा तो होता ही रहता है। किसी घटना के प्रभाव से कितने ही आयोजन बन जाते हैं तो फिर खत्म भी हो जाते हैं। दिन भर की मेहनत के बाद जो बारूद भरी अनार तैयार होती है वह जरा-सी आग दिखाते ही अग्निफुहार छोड़ती हुई मिनिट भर में खत्म हो जाती है।

◘

दूसरे दिन अनुपम और अनिन्दनीया पी. एस. पी. के ऑफिस पहुंचे और उसके सदस्य बन गये तथा उसके अगले ही दिन मॅरिज रजिस्ट्रार के ऑफिस में पहुंचकर उन्होंने शादी के अनुबन्ध पर हस्ताक्षर कर दिये। शायद यह कहने की जरूरत नहीं कि उसी दिन विधिवत वैदिक रीति से भी उनकी शादी हो गई।

इस कांड में कांग्रेस और कम्युनिष्ट दोनों पार्टियों के ही सदस्य स्तम्भित रह गये। इतने दिनों के राजनैतिक जीवन का अन्त आखिर इस काण्ड में हुआ! इस उपलक्ष्य में उन्होंने मिला-जुला जुलूस निकालकर उनके घर के सामने नारे लगाये और उन्हें धिक्कार दे आये। फिर भी खुशी की बात यह थी कि जुलूस के कारण उस दिन ट्राम-बस बन्द नहीं हुई, क्योंकि उनके घर के रास्ते में न ट्राम चलती थी, न बस। अगर अनुपम और अनिन्दनीया को यह मालूम होता कि 'क्या था विधाता के मन में' तो वे पहले से ही सावधान रहते।

◘ ◘ ◘

यह एक विचित्र अंधकार

आइभि राहा

° ° °

'ऐ देख, देख न ! मां कसम, पहचाना-पहचाना-सा लग रहा है। याद नहीं आ रहा है, कहां तो देखा है !'

'अरे, वह तो पिकलू है। पिकलू ! तुम्हें याद नहीं ? हमारे साथ आशुतोष कॉलेज में पढ़ा करता था न ?'

'ओह हां, वही, अंग्रेजी साहित्य का पिट्ठू ! हम बंगला पढ़ते थे इसलिये जो उपेक्षा करता था हमारी। आंख-मुंह की एक खास मुद्रा बनाकर कहा करता था, अमां छोड़ो भी यार, इस देश का साहित्य भी कोई साहित्य है ?'

'हां-हां, याद आ गया। तो पड़ोस की वह.....'

'जो भी कहो, यार है चीज ! लेकिन कैसे फंसा लिया, बता तो सही ?'

'यह ऐसा कौन मुश्किल काम है ! दो रुपये अस्सी पैसे सिनेमा के और ऊपर से एक कटलेट, बस।'

'बेटा हमको भी रंग दिखाता है। क्या शेयर करने से डर लगता है ?'

'हां, यार । अपना तो भूगा-ही-भूगा है। जलाकर राख कर दिया है साले ने !'

■

हमारे घर के चबूतरे पर ही उनका अड्डा जमता था। रोज आकर बैठ जाते। हल्ला-गुल्ला मचाते। राजनीति पर बहस करते। सिनेमा-स्टारों पर टीका-टिप्पणी करते। लड़की देखते ही आवाज कसते। फिर चाहे वह बचपन में गोद खिलायी मोहल्ले की लड़की हो या मां की उम्र की अन्य मोहल्ले की अपरिचित महिला। दादी ने एक दिन उनके शोर-शराबे से तंग आकर कहा था, 'अच्छा, क्या तुमलोगों को बैठने के लिये और कोई जगह नहीं मिलती जो यहां बैठकर इस तरह चीखते-चिल्लाते हो? तुम लोगों के मारे क्या हम दो घड़ी भजन-पूजन भी नहीं करें?' बस, इतना काफी था। फिर तो दादी के लिए पिंड छुड़ाना मुश्किल हो गया। उनमें से एक बोला, 'क्यों बुढ़िया, बहुत रुआब दिखा रही हो? जानती हो, किससे बात कर रही हो? और हां, तुम्हारी नातिन के क्या हाल-चाल हैं? उसको क्यों नहीं भेज दिया? कोई फैसला ही कर डालते।' तंग पेन्ट पर कुरता पहने एक लड़के ने कहा, 'ज्यादा मत टर्रा बुड्ढी, नहीं तो तेरी नातिन की मिट्टी पलीद करके छोड़ेंगे।'

दादी गुस्से में बड़बड़ाती लौट गई थी। छोटे चाचा शाम को लौटे तो सारा किस्सा सुन सन्नस्त हो उठे। दादी पर गुस्सा भी बहुत हुए।

'उन सभी को मैं पहचानता हूं। उनके नाम भी जानता हूं। ये सभी मोहल्ले के प्रतिष्ठित घरों के लड़के हैं, पर खुद इनकी कोई इज्जत नहीं।'

◘

'मां कसम, तू ही बता, कहीं चला जाय? चबूतरे पर थोड़ी देर निश्चिन्त होकर बैठ सकें, यह भी मुश्किल कर रखा है। साली पुलिस आकर इज्जत करेगी। ये पुलिसवाले भी तो बेटे उसी जाति के हैं जो कहते हैं कि, 'तूने नहीं तो तेरे बाप ने पानी गंदा किया होगा।' और कोई दूसरा न सवाल, कोई बात न चीत, बस सीधे ले जाकर हवालात में ठूस देंगे।'

कमल ने मानो कोई नई खोज की हो इस तरह की मुख-मुद्रा बनाकर कहा, 'न्यू-मार्केट चलें? बहुत दिनों से उधर जाना ही नहीं हुआ। चलो न आज वहीं चला जाय। खूब मजा......"

'तुम्हें और कोई जगह नहीं सूझी, मेरे चांद ?' कमल की बात काटते हुए असीम बीच में ही बोल पड़ा।

'ओह, तो चिढ़ते क्यों हो ? उसने तो खुद के लिए उपयुक्त जगह ही ढूंढ़ी है।'

दीपू की इस बात पर सभी हो-हो करके हंस पड़े।

लेकिन सुमन नहीं हंसा। कमल की बात का ही उसने जवाब दिया, 'धत्, वहां जाकर क्या करेंगे ? वहां जाकर तो यही देखने को मिलेगा कि सभी जानवर अपने-अपने जोड़ों के साथ प्रेमालाप कर रहे हैं। सालों को देखकर और मन खराब हो जाता है। हमारी किस्मत में तो वे सब जुटेंगी नहीं।"

'क्या बात करता है, यार ? बस इतनी-सी बात के लिये मन छोटा करते हो ? मैं तो ऐसी-ऐसी कितनी ही चीजें हाथ में आई हुई भी छोड़ देता हूं।'

असीम ने उपेक्षा दिखाते हुए कहा, 'रहने दे बस। तुझे डींग मारने की जरूरत नहीं है। हमें सब मालूम है, तेरी दौड़ कहां तक है ? हां, सचमुच कोई जोगाड़ हो तो चल, ट्रिकाज में चलें।'

'तुमलोग सिर्फ यही सब करते रहोगे क्या ? कल की बात याद है न ?'

'कल ! कल क्या है ?'

'सब कुछ भूल बैठे हो, गुरू ?'

'परीक्षा ? पढ़ने-लिखने से कोई सरोकार ही नहीं, फिर वह सब किसे याद रहता है ?'

युनिवर्सिटी-बिल्डिंग के एक तल्ले से नीचे तक उनका साम्राज्य है। गेट के पास, सीढ़ी पर तथा कारीडोर में वे लोग अड्डा जमाये रहते हैं।

उस बार मृणाल हमलोगों के साथ परीक्षा नहीं दे सका था। परीक्षा के कई महीने पहले उसको बैंक में नौकरी लग गई थी। पढ़ने-लिखने में वह बहुत होशियार था। हम सभी जानते थे कि वह बहुत अच्छा रिजल्ट लायेगा। दो साल बाद वह इस बार परीक्षा दे रहा है।

मृणाल के गेट के सामने पहुंचते ही एक लड़के ने उसको डांटा, 'आप यहां क्या कर रहे हैं ?'

मृणाल नर्वस हो गया। उस वक्त शायद उसके दिमाग में परीक्षा की चिन्ता के अलावा और कोई बात नहीं थी। इसीलिये वह उम्र में अपने से छोटे

लड़के की इस बात का जवाब देते समय भी डर के मारे हकला उठा। बोला, 'जी, मैं परीक्षार्थी हूं।'

'सब्जेक्ट क्या है?' कड़ाई से पूछा गया।

'जी, इ····इ····इंग्लिश।'

'ऊपर चले जाइये। तीन तल्ले पर।' कमांडर जैसा हुक्म हो गया।

ऊपर पहुंचकर मृणाल परीक्षा-हॉल ढूंढ रहा था कि एक लड़का आगे बढ़ आया, 'यहां क्या कर रहे हैं?'

'मैं अपनी क्लास ढूंढ रहा हूं।'

'सब्जेक्ट क्या है, इंग्लिश? इधर आइये। उस सामनेवाले कमरे में बैठ जाइये। जाइये! और हां, रुपये लाये हैं? दस रुपये लगेंगे।'

'द-स-रु-प-ये? क्यों? इ-इतने रुपये तो मैं लाया नहीं। मेरे पास तो सिर्फ छः रुपये हैं।'

लड़के ने व्यंग्य से होंठ बिचकाये। 'परीक्षा देने आये हैं और रुपये नहीं लाये? कहां के जन्तु हैं आप?'

फिर कहा, 'खैर दीजिये, छः रुपये ही दीजिये। किताबें-किताबें तो लाये हैं न? या कि वे भी····'

'किताबें? किताबें किसलिये? किताबों का क्या होगा?'

'बेड़ा गर्क हो! तो फिर आप परीक्षा किस तरह देंगे? ना! आप तो शायद ऐसे बैन से आप परीक्षा पास करके भी क्या करेंगे? रब्बिश! जाइये, जाकर अपनी जगह बैठ जाइये। ···· जाइये!'

मृणाल को मन-ही-मन क्रोध तो बहुत आ रहा था लेकिन फिर भी वह कुछ बोल नहीं सका। बल्कि भय और आशंका से वह भीतर-ही-भीतर कांप रहा था। क्लास में प्रवेश कर उसने एक बार चारों ओर देख लिया। सभी के पास आवश्यक कॉपी-किताबें थीं। मृणाल का खाली हाथ देख सबने उसकी हंसी उड़ाई। अजीब-अजीब चेहरे बनाये सभी ने जिनमें व्यंग्य एवं तिरस्कार जैसा भाव था।

मृणाल भी अपने को उस वक्त अपराधी महसूस करने लगा। वह बहुत देर तक चुपचाप बैठा रहा। जब प्रश्न-पत्र सामने आया तो उसने देखा कि ये सभी

प्रश्न वही थे जिन्हें वह याद करके आया है। उसका जी खुश हो गया। लेकिन उसने हॉल में चारों तरफ नजरें घुमायीं तो स्तब्ध रह गया। सभी सामने किताब खोले नकल कर रहे थे। मना करनेवाला कोई भी नहीं था।

मृणाल जो याद करके आया था अचानक सब भूल गया। उसने याद करने की बहुत कोशिश की लेकिन सफल नहीं हुआ। मानो सब गड़बड़ हो गया। तंग आकर वह उठ खड़ा हुआ। बाहर निकलते ही एक लड़के ने टोका, 'कहां जा रहे हैं ? उठकर क्यों आ गये ?'

'मैं परीक्षा नहीं दूंगा; घर जाना चाहता हूं।'

'परीक्षा नहीं देंगे ? मतलब ? तो फिर आये क्यों थे ?'

दूर खड़े एक मस्ताने किस्म के लड़के ने वहीं से चिल्लाकर पूछा, 'क्यों रे लालट्ट, क्या मामला है ? ढीले कर न।'

'अरे गुरू, बाहर का माल चला जाना चाहता है।'

'पत्ती छोड़ी है ?'

'अभिक नहीं। गुंजाइश नहीं है।'

'अरे भगा, खदेड़ उसे, कहां से साले सब....'

मृणाल उनके हाथ से मुक्ति पाकर सड़क पर निकल आया। इतनी देर के दबे क्रोध को उसने प्रकट किया एडमिट-कार्ड के टुकड़े-टुकड़े कर उन्हें सड़क पर फेंककर। इस वक्त उसे परीक्षा और एम. ए. की डिग्री आदि बातें नितान्त व्यर्थ एवं अर्थहीन प्रतीत हुईं।

□

'अरे, क्या सोचने लगीं ? डरती हो ?'

'नहीं, डरती नहीं। घर के बारे में सोच रही हूं। इस सब काण्ड के बाद वापस घर लौटने में बहुत खराब लग रहा है।'

'ओह ! तुम चिन्ता क्यों करती हो ? अब और ज्यादा दिन तो हैं नहीं। देख लेना, इस बार के इन्टरव्यू में जरूर चुन लिया जाऊंगा।' दीपंकर की आवाज में एक प्रकार का दृढ़ आत्म-विश्वास था।

'तुम कैसे कह सकते हो यह ? ऐसी बातें तो तुम हमेशा ही कहते हो। सब फालतू बातें हैं।' अमिता ने अविश्वास प्रकट किया।

'पिछली बार तो उस साले डिरेक्टर की पत्नी का भतीजा था टपका था बीच में; इसीलिए मैं रह गया। साला आकर टपका भी तो लास्ट मोमेन्ट में....। पर इस बार की बात और है। जो लोग इन्टरव्यू लेते हैं उनके चेहरे तथा आँखों के भाव से ही पता लग जाता है। भई, जब उन्हें किसी को लेना नहीं होता तो आलतू-फालतू क्वेश्चन पूछते हैं ताकि बेचारा उम्मीदवार खुद ही डरकर भाग जाये। इनलोगों ने तो मुझसे कुछ पूछा ही नहीं। इन्टरव्यू-बोर्ड में मेरे मझले जीजाजी थे न, इसीलिये तो····।'

'लेकिन अगर इस बार भी कुछ नहीं हुआ, तब ? पिताजी ने जैसा उत्पात मचा रखा है उससे तो लगता है, मेरी भी सीमा जैसी ही हालत न हो।'

'सीमा ! क्या हुआ है सीमा को ?'

'वाह ! तुम्हें नहीं मालूम ? उसने भी तो मेरी तरह किसी से बताये बिना ही रजिस्ट्री-मैरिज की थी। उसके पिताजी ने जब उसकी शादी सम्पन्न तय कर दी तब उसने बताया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। उसके पिता ने एक तरह से जबर्दस्ती ही उसकी शादी कर दी। छी छी, कैसा घृणित काण्ड हुआ यह ! वह तो समीर बहुत ही भला लड़का है, वरना····'

'तो क्या तुम सोचती हो कि तुम्हारा भी वही हाल····! हूँ देखना, जान नहीं लड़ा दूँ तो अपनी।'

अचानक दीपकर ने आवाज दबाकर कहा, 'ऐ, एक काम करोगी ? हमारे घर चलोगी ?'

'वाह ! तुम्हारे पिता, भाई····'

'गोली मारो बाप और भाइयों को ! उनसे हमें क्या करना है ?'

'ना बाबा, इन सब झमेलों में पड़ने की जरूरत नहीं। धत् तेरी, अभी से यह सब नहीं करते तो ही अच्छा रहता। तुम्हीं तो बेकार इतने उतावले हो रहे थे····।'

'क्यों, तुम्हें परेशानी हो गई है क्या ? तो ठीक है, मगर तुम्हारे पिताजी अगर तो····'

'धत् । मैं यह थोड़े ही कह रही हूं । तुममें तो इतना बचपना है कि''''। लो, पहुंच गये । टैक्सी यहां रोकोगे ?'

दीपंकर सहम गया । 'तु'''' तुम, बल्कि मैं ही पहले उतर जाता हूं । तुम टैक्सी घर तक ले जाओ ।'

शमिता ने धीरे-से दीपंकर का हाथ दबाया तथा इशारे से ड्राइवर के सामने अलग-अलग उतरने की बात कहने को मना किया । मानो इतनी देर से टैक्सी-ड्राइवर के कान बन्द ही थे । कम-से-कम शमिता का तो यही खयाल था शायद !

□

बड़ी मुश्किल से बस की पट्टी पर पांव रख पाया । ओह ! बहुत भीड़ है । सुबह से तो टप-टप बरसात हो रही है । ट्राम और सरकारी बसें तो मानो नजाकत के मारे मरी जाती हैं । पानी शरीर से छूते ही वे नाराज हो जाती हैं । एकमात्र भरोसा है पब्लिक बस का । उन्होंने भी मौका देखकर मांग की है, भाड़ा बढ़ाओ !

भीतर से किसी का खिजलाहट-भरा स्वर सुनाई पड़ा, 'बेटे बस में लिखकर रखेंगे पैंतीस व्यक्तियों के बैठने की जगह, तो फिर कितने लोग खड़े रहेंगे और कितने रॉड पकड़कर झूलते रहेंगे यह भी तो लिख सकते थे । बेटे बसें तो निकालेंगे कम और उनमें ठूंस लेंगे इतने लोगों को मानो ट्रंक में कपड़े ठूंस लिये हों ।' और भी पता नहीं वह व्यक्ति क्या-क्या बड़बड़ा रहा था ।

'ओ भाई, ओ चश्मेवाले भाई, मुझे एकदम से ही आउट किये दे रहे हो ! जरा देख कर, भाई ।'

'क्या करूं भई, आप ही बताइये । मुझे भी तो पोजीशन लेनी पड़ेगी न !'

'साली बरसात भी जान खाये जा रही है । तंग कर डाला ।'

'अरे दादा, धक्का क्यों दे रहे हैं ? देखते नहीं, लेडीज बैठी हैं ?'

'जरा-सा हाथ छूने में अगर धक्का लगता है तो आपको टैक्सी में ही जाना चाहिये, जनाब । फिर हाथ तो क्या साया तक नहीं छूयेगा ।'

भीतर से किसी ने आवाज कसी, 'यह तो पुरानी बात हो गई बड़े दा, कुछ नया चुटकुला छोड़िये ।'

'टैक्सी मे जाने की तो आपने सलाह दे दी, पर उनका
सामने बैठे एक वृद्ध सज्जन भी आज-कल के बच्च
...शिश कर रहे थे।

'वाह, क्या बात कही है, दादू (दादा), शाबाश!'
एक छोकरे ने।

'अरे भई, क्या कर रहे हैं? भीगा छाता शरीर
दिया कमीज का सत्यानाश!' वह व्यक्ति अत्यन्त क्रोध के
की तरह कमीज पर से पानी झाड़ने लगा।

□

ऑफिस आकर देखता हू कि कोई भी काम नहीं कर रहा है। सभी कर्मचारी दलों मे बटकर गप-शप कर रहे हैं। क्या बात है? तभी सुमन पास आया, 'आपने सुना, विकाश को पुलिस पकड़कर ले गई है? परसों सुबह उसके मौहल्ले मे एक्शन हुआ था। अरे, वह तो उस वक्त मौहल्ले में था ही नहीं। पुलिसवालों ने उसे आइडेन्टिटी कार्ड दिखाने तक का अवसर नहीं दिया। विकाश ने शायद ऑफिस में फोन करना चाहा था तो जानते हो, उन्होंने क्या कहा, 'हमसे ज्यादा होशियारी न बरतो?' क्या अन्याय है! है न? हमने भी तय कर लिया है कि घेराव करेंगे।'

'घेराव? हठात् घेराव किसका करेंगे?'

'ऑफिसरों का। थाने मे फोन करके विकाश को छुड़वाने के लिए। क्या कर्मचारियो के प्रति उनकी कोई जिम्मेदारी नहीं है?'

बात सुनकर शान्ता ने होठ बिचकाये। 'क्यों, ऑफिसर का घेराव क्यों? क्या उनके हुक्म से विकाश को पकड़ा गया है जो वे 'सफर' करेंगे?'

लड़कियां इस बात के लिये बदनाम हैं कि उनमें किसी के प्रति भी किसी प्रकार की फीलिंग नहीं होती। लगा कि यह बात झूठ नहीं है।

देवाशिष तो मुझसे बराबर ही कहता है, 'तुमलोग चाहे बी. ए., एम. ए. पास कर लो और चाहे ऑफिसों में नौकरी कर लो, लेकिन अभी भी पड़ी हो उसी प्रिमिटिव युग मे ही। चांद पर मनुष्य के कदम पड चुके हैं, देश मे कैसी-कैसी उथल-पुथल हो रही है, लेकिन तुमलोगों की विचारधारा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।' देवाशिष ठीक ही कहता है।

।त्नी ने कुछ दिन ऑफ़िस से छुट्टी ली थी। वे पति-पत्नी दोनों 'धत्। मैं ऑफिस में काम करते हैं। पत्नी की अनुपस्थिति के दिनों में जयन्त लो, पहुंत ही रसिक हो-होकर बातें की थीं। बस, शान्ता दी ने जयन्त के दीए जाकर उसकी पत्नी को कितने ही उपदेश दे डाले और पति की तरफ से उसे सतर्क कर आईं। बाद में हमने यह खबर सुनी तो चकित रह गये।

ऑफिस में चन्द्रा कुछ लजायी-लजायी-सी रहती है। अधिक बातें करना नहीं चाहती। लेकिन फिर भी उसको रिहाई नहीं मिलती है। जैसे, 'हां री तुम्हारी शादी को कितने दिन हो गये? हाय राम, पांच साल हो गये? अभी तक बच्चे क्यों नहीं हुए? तो फिर, तुम्हारा पति किसकी नौकरी करता फिरता है?' आदि-आदि।

चन्द्रा को इन सब बातों से बहुत शर्म आती है। इस तरह की आलोचना उसे पसन्द भी नहीं है। फिर भी सभी उसे छेड़ती हैं। कम उम्रवाली लड़कियों में तो अधिकतर यही सब बातें चलती रहती हैं, या फिर 'लेटेस्ट डिजाइन' के बारे में बतियाती रहती हैं। पुरुष जब कहीं बैठकर क्रिकेट या फुटबॉल मैच की बातें कर रहे होते हैं तब ये लड़कियां बिना प्रयोजन ही वहां पहुंच जाती हैं और बात-चीत में शरीक होने की कोशिश करती हैं, कहती हैं, 'जयन्तीलाल थोड़ी देर और विकेट पर रह जाता तो मजा आ जाता। सरदेसाई तो बस फालतू ही है। एक रन बनाकर ही कूपर के हाथ में कैच दे दिया। हां, बेदी और वाडेकर कुछ अच्छा खेले हैं। फिर भी एक सौ पैंतालीस रन में ही इनिंग्स खत्म; यह भी कोई मतलब हुआ?' इसी तरह के दो-चार मुखस्थ किये नाम या अखबार में पढ़ी रिपोर्ट से, या घर में बड़े भाइयों के मुंह से सुनी बातों की पुनरावृत्ति करके स्वयं को बहुत ही जानकार-होशियार दिखाती हैं पुरुषों के सामने; मानो खेल के बारे में बहुत समझती हों। सिर्फ खेल ही क्यों, सभी विषयों के बारे में जानकारी प्रकट करना ही आज की स्टाइल है। मर्द लोग उनके ज्ञान की परिधि नाप नहीं सकते, यह बात नहीं है। वे लोग तो सिर्फ उनकी कम्पनी के लोभवश ही उनकी मूर्खतापूर्ण बकवास को भी महत्वपूर्ण बातों की तरह मनोयोग से पास बैठे सुनते हैं। इस सातवें दशक की लड़कियों का विप्लव सिर्फ बातों एवं पोशाक में ही है, काम में नहीं। साड़ी उतरती-उतरती नाभि के नीचे तक पहुंच गई है। उसके अलावा कुर्ता, बेलबॉटम, लुंगी,

त्नी ने कुछ दिन ऑफिस से छुट्टी ली थी। वे पति-पत्नी दोनों ऑफिस में काम करते हैं। पत्नी की अनुपस्थिति के दिनों में जयन्त ...ल ही रसिक हो-होकर बातें की थीं। बस, शान्ता दी ने जयन्त के ...जाकर उसकी पत्नी को कितने ही उपदेश दे डाले और पति की तरफ से उसे सतर्क कर आई। बाद में हमने यह खबर सुनी तो चकित रह गये।

ऑफिस में चन्द्रा कुछ लजायी-लजायी-सी रहती है। अधिक बातें करना नहीं चाहती। लेकिन फिर भी उसको रिहाई नहीं मिलती है। जैसे, 'हां री तुम्हारी शादी को कितने दिन हो गये? हाय राम, पांच साल हो गये? अभी तक बच्चे क्यों नहीं हुए? तो फिर, तुम्हारा पति किसकी नौकरी करता फिरता है?' आदि-आदि।

चन्द्रा को इन सब बातों से बहुत शर्म आती है। इस तरह की आलोचना उसे पसन्द भी नहीं है। फिर भी सभी उसे छेड़ती हैं। कम उम्रवाली लड़कियों में तो अधिकतर यही सब बातें चलती रहती हैं, या फिर 'लैटेस्ट डिजाइन' के बारे में बतियाती रहती हैं। पुरुष जब कहीं बैठकर क्रिकेट या फुटबॉल मैच की बातें कर रहे होते हैं तब ये लड़कियां बिना प्रयोजन ही वहां पहुंच जाती हैं और बात-चीत में शरीक होने की कोशिश करती हैं, कहती हैं, 'जयन्तीलाल थोड़ी देर और विकेट पर रह जाता तो मजा आ जाता। सरदेसाई तो बस फालतू ही है। एक रन बनाकर ही कूपर के हाथ में कैच दे दिया। हां, बेदी और वाडेकर कुछ अच्छा खेले हैं। फिर भी एक सौ पैंतालीस रन में ही इनिंग्स खत्म; यह भी कोई मतलब हुआ?' इसी तरह के दो-चार मुखस्थ किये नाम या अखबार में पढ़ी रिपोर्ट से, या घर में बड़े भाइयों के मुंह से सुनी बातों की पुनरावृत्ति करके स्वयं को बहुत ही जानकार-होशियार दिखाती हैं पुरुषों के सामने; मानो खेल के बारे में बहुत समझती हों। सिर्फ खेल ही क्यों, सभी विषयों के बारे में जानकारी प्रकट करना ही आज की स्टाइल है। मर्द लोग उनके ज्ञान की परिधि नाप नहीं सकते, यह बात नहीं है। वे लोग तो सिर्फ उनकी कम्पनी के लोभवश ही उनकी मूर्खतापूर्ण बकवास को भी महत्वपूर्ण बातों की तरह मनोयोग से पास बैठे सुनते हैं। इस सातवें दशक की लड़कियों का विप्लव सिर्फ बातों एवं पोशाक में ही है, काम में नहीं। साड़ी उतरती-उतरती नाभि के नीचे तक पहुंच गई है। उसके अलावा कुर्ता, बेलबॉटम, लुंगी,

जीन्स । नये-नये फैशन आते हैं और चले जाते हैं।

□

पूरे ऑफिस में खबर फैलने में देर नहीं लगी कि सुव्रत का डिमोशन हुआ है। सभी ने कहा, यह अवश्य ही अनन्त की कारसाजी है। एकाउन्ट्स सेक्शन में उसको डिस्पैच में कर दिया गया है। मुझे एक दिन की बात याद आ जाती है। किसी बात को लेकर बड़े साहब ने सुव्रत को बुलाकर डाटा था। डाट बिना कारण ही पड़ गई थी क्योंकि गलती जिसकी थी वह बड़े साहब की आंख का तारा था। उसको बचाने के लिए मुखर्जी साहब यानी बड़े साहब ने सुव्रत को लोगों के सामने अपराधी ठहराया था।

सब कुछ जानते-बूझते हुए भी सुव्रत ने उनके सामने कुछ नहीं कहा। किसी प्रकार का प्रतिवाद तक नहीं किया। बस फट पड़ा हमलोगों के पास पहुंचकर। वह अपने भीतर की ज्वाला को, आग को, बुझाना चाहता था अपने सह-कर्मियों के समक्ष बड़े साहब को""""। इन मजेदार बातों को सभी सह-कर्मी रस ले-लेकर सुनने लगे। वे सुव्रत को और अधिक भड़काने की कोशिश भी करते जा रहे थे।

मुझे यह बात बहुत बुरी लगी। मैंने सोचा, क्या सुव्रत बिलकुल ही मूर्ख है? वह क्या इतना भी नहीं समझता कि जिनके सामने वह मन की भड़ास निकाल रहा है उनमें से कोई भी उसका मित्र नहीं है। वह तो खुद रोज देखता है तथा जानता है कि कोई किसी की भलाई फूटी आंखों नहीं देख सकता। अपने सह-कर्मी की अनुपस्थिति में उसकी बुराई करते हैं, किसी की नौकरी को किस प्रकार नुकसान पहुंचाया जा सकता है इसका उपाय सोचते रहते हैं, और सामने पड़ते ही कैसे बत्तीसी निकालकर हंसते हैं, मित्रता का ढोंग रचाते हैं!

अभी सुव्रत का भाषण जारी ही था कि इसी बीच अनन्त मित्र आकर अपनी टेबिल के सामने बैठ गया। सुव्रत फिर भी चुप नहीं हुआ, बल्कि उसका गुस्सा और अधिक बढ़ गया। अनन्त मित्र के सामने बड़े साहब के विषय में कुछ कहना हितकर नहीं है, यह जानते हुए भी सुव्रत चुप नहीं रहा। लेकिन आश्चर्य तो इस बात का है कि इतनी देर से जो लोग बड़े साहब का महा-श्राद्ध करने में सुव्रत के लिए मसाला जुटा रहे थे वे तत्काल हवा हो गये।

इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह कि वे अब अनन्त मित्र की टेबिल के सामने भीड़ लगाकर खड़े हो गये। उनमें से एक ने फुर्ती से सिगरेट का पैकेट खोलकर अनन्त मित्र के सामने बढ़ा दिया। अनन्त मित्र को सिगरेट जलाने का कष्ट तक नहीं करना पड़ा। एक और ने लाइटर जलाकर आगे बढ़ाया। फिर राजेन ने कहा, 'अनन्त दा, उस दिन रेडियो में आपकी बेटी का गाना सुना था। वाह, क्या खूब गाया था! क्या गला पाया है!' उसकी बात खत्म होते-न-होते कमल ने बड़े अपनत्व से पूछा, 'इस बार पूजा पर तुम बाहर नहीं जा रहे हो, अनन्त दा?'

'भाभी कैसी हैं, अनन्त दा? कहे देते हैं, भाभी के हाथ के बने मांस के समोसे एक बार और खिलाने पड़ेंगे।' उन सब के बीच में से सुमिता भी चहक उठी।

ओफ! असह्य है यह ढोंग! मेरा मन हुआ कि चिल्लाकर उन सबसे कहूं, 'आप सब चिड़ियाघर में वास करिये जाकर। आपलोगों में मनुष्यत्व नहीं, मानवीयता नहीं। जब सिर्फ दो टाइम खाना जुटाने की ही प्रॉब्लम है आप सभी को, तो फिर वहां जाकर रहने में ही क्या आपत्ति है? भोजन तो, सुना है, वहां दोनों वक्त ही देते हैं।'

पब्लिसिटी डिपार्टमेंट के बूढ़े क्लर्क बाबू ने कहा था, 'हूं! हमलोग राजनीति के नाम पर बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। सभाओं में भाषण देते हैं। अन्य देशों के दुःख को देखकर विचलित हो उठते हैं। उस पार के बांगला देश की मुक्ति के लिये जुलूस निकालते हैं। अविचार तथा अन्याय के प्रतिकार का बहाना बनाकर ऑफिसों में काम बन्द करते हैं। स्कूल, कॉलेजों में पढ़ाई नहीं होने देते। हड़ताल करवाते हैं।.........और ऑफिस में इतने दिनों तक जिसके साथ बैठकर काम किया है उसके साथ अन्याय होते देखकर कुछ भी नहीं कह सकते? डर लगता है, क्या पता, कहीं अपनी ही नौकरी न चली जाय? अगर हम पर बड़े साहब असंतुष्ट हो गये तो? नौकरी को बचाये रखने के लिए सिर्फ बड़े साहब को ही खुश नहीं रखना पड़ता बल्कि उनके चमचे पर भी पालिश करनी पड़ती है। बेशर्मों की तरह खुशामद करनी पड़ती है।'
पब्लिसिटी डिपार्टमेन्ट के क्लर्क बाबू की बात सुनकर मैं सिर झुका लेती हूं। उनको क्या कहूं, मेरी भी तो हिम्मत नहीं हुई। मेरी समस्त अन्तरात्मा चीख रही थी, तब भी तो मैं उस विद्रोह को भाषा देकर उसे उच्च स्वर में प्रकट नहीं कर सकी। दरअसल हम मर चुके हैं। मर रहे हैं। अपनत्व, ममता,

मित्रता आदि अनुभूतियों को महसूस करने की शक्ति हम खो बैठे हैं। जिस तरह पराधीनता के जमाने में एक वर्ग ऐसा था जो बड़े-बड़े खिताब पाने के लिये, नौकरी बहाल रखने के लिये बेशर्मों की तरह राजशक्ति की खुशामद किया करता था तथा अपने देश के लोगों के प्रति उदासीनता दिखाता था, आज भी बिल्कुल वही स्थिति है। दृश्य परिवर्तन हुआ है, लेकिन पात्र नहीं बदले हैं।

दिन-ब-दिन हम कैसे भावना-शून्य हुए जा रहे हैं। शुभ भावों को खो बैठे हैं। कौन तथा किसलिए आकर पड़ोसी का खून कर जाते हैं यह जाने बिना हम यथाशीघ्र दरवाजा बन्द कर निर्लिप्त हो जाते हैं। हार्ड-जम्प लगा-लगाकर चीजों के दाम बढ़ते जा रहे हैं, लेकिन हम निर्विकार हैं। सड़क पर चलती-चलती बस सी० एम० डी० या कार्पोरेशन या और किसी द्वारा बनाये गड्ढे में गिरकर भीतर के लोगों के बारह बजा देती है, फिर भी हमें होश नहीं आता। घण्टों बस-स्टैण्डों पर खड़े-खड़े बस आने के पल गिनते हैं और स्टेट ट्रांसपोर्ट हमारी इस पीड़ा की रत्ती भर परवाह नहीं करती, फिर भी हम धैर्य धारण किये रहते हैं। मोहल्ले में बम-बाजी होती है, लूट-पाट होती है, जिन्दा रहने के लिये चन्दा देना पड़ता है। वे लोग कहते हैं, 'सचमुच, यह तो बहुत बड़ा अन्याय है, बहुत खराब बात है, यह सब नहीं चल सकता। सरकारी दफ्तरों को पूर्णतया सुधारना होगा। इस सबकी जाँच के लिये कमीशन बैठाना पड़ेगा।' और हम 'ही-ही' हँसकर कहते हैं, 'तथास्तु'। और हालत ? यथा पूर्वं, यथा परं। सच, इस धरती पर आज यह एक अद्भुत अंधकार घिर आया है।

इसको अद्भुत अंधकार के अलावा और क्या कह सकते हैं ? अगर यह सच नहीं होता तो उस दिन धर्मतल्ला पर पांच-छः लड़के उन लड़कियों को....।

मैं बस के इन्तजार में खड़ी थी। मेरी तरह और भी बहुत-से लोग खड़े थे। उनमें कई लड़के भी थे। उम्र उन सभी की तीस से नीचे ही होगी। टिपटॉप टाइप पैन्ट तथा कान के खूब नीचे तक लम्बी-लम्बी कनौतिया।

वे सब खड़े-खड़े सिगरेट पी रहे थे। आकाश की ओर मुंह करके धुएं के छल्ले छोड़ रहे थे, और उनकी बातचीत का विषय था लड़कियां। उनमें से एक बोला, 'अरे, तूने देखा, आज-कल एक तरह की छोटी साइज की लड़कियां निकली हैं ? लगता है, सभी छोकरियों ने स्कूल-वूल में पढ़ना छोड़ दिया है।

अगर इनमें से एक भी हाथ लग जाय तो कसम से, मजा आ जाय ! मुझे तो लगता है, ये सभी अभी अनछुई ही हैं ।....'

'हां रे, जरा पास जा न, तेरी गुरुआनी हैं ।'

'ए, देख....देख ! आ–हः ! टॉप ! टॉप माल है, कसम से ! आ–हः ! जवाब नहीं । दिल पर ठोकर लगी है, कसम से !'

मैंने देखा, लुंगी पहने कई लड़कियां हमारी तरफ आ रही हैं । गोरी, चुलबुली तथा खूबसूरत लड़कियां ।

'क्या फैशन है, यार ! दिल पर कटारी चला रही हैं । गुरू, कहां से ले आये ?'

उसके बाद एक बेहद गंदा फिकरा कसा उनमें से एक लड़के ने । तब तक लड़कियां पास आ गयी थीं । बात उनके कानों में भी पड़ी, लेकिन आश्चर्य की बात कि वे पीछे मुड़कर होले-से मुस्करा दीं । इसका मतलब, उस फिकरे को उन्होंने एप्रीशियेट किया । उन्हें शर्म नहीं आई । अपमानित महसूस नहीं किया । एक छोकरे ने कहा, 'लाइन की ही है, रे !'

□

सुबह रतन ने आकर अपने काका को बताया, 'कल क्या कांड हुआ, पता है ? कल रात पुलक की क्या दुर्दशा की है ! अरे, सब मोहल्ले के ही लड़के थे । कई दिनों से उनके घर सब ताश खेलने जाते रहे हैं । उन्होंने कल रात अचानक ही पुलक को घेर लिया और कहा, 'जेब में जितना माल-पानी है, सब निकालिये तो जरा ।' शायद पुलक ने उनमें से एक को पहचानकर कहा था, 'तुम अविनाश के बेटे गौतम हो न ? छीः छीः, तुम भले घर के लड़के होकर भी....' बस, फिर क्या था, गौतम बोला, 'ज्यादा टर्र–टर्र मत करिये, जनाब । ये नक्शे किसी और को दिखाइयेगा । हुंह.... ! भल्ले घर के....! खूब बढ़िया सरकारी नौकरी करके मौज मार रहे हैं, और हमें ज्ञान सिखा रहे हैं ! जल्दी से माल बाहर करो वरना लाश ही पड़ी नजर आयेगी ।'

मैं कमरे में बैठा सब सुन रहा था । लेकिन आश्चर्य ! इस बात की मेरे मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई । मैंने तो उठकर रेडियो को और तेज कर दिया तथा विज्ञापनयुक्त हिन्दी फिल्मी-गानों का कार्यक्रम सुनने लगा ।

□

बस में लोग ठसाठस भरे हुए हैं। सभी निर्विकार भाव से एक-दूसरे के पावों को जूतों-चप्पलों से कुचल रहे हैं। कोहनी से धक्का मारते हैं। 'आह! ऊह! क्या कर रहे हैं? जरा सीधे होकर खड़े होइये न। आह, कुचल डाला रे पैर!' गेट के पास से किसी ने चिचियाकर वाक्य फेंका, 'क्या बात है जनाब? अन्दर बढ़िये न! रास्ता रोककर क्यों खड़े हैं? और लोग नहीं चढ़ेंगे क्या?' गेट पर खड़े व्यक्ति ने उसकी तरफ उपेक्षा से देखा, पर खिसका नहीं।

'सब-के-सब आवारा नवमली हैं। सही बात कहो तब भी कोई कुछ सुनता ही नहीं....'

बस चल पड़ी। अचानक ही गेट रोककर खड़े लड़के ने आगे बढ़कर, बड़बड़ करनेवाले भले आदमी का कमीज छाती के पास से मुट्ठी में कसकर पकड़ लिया। बोला, 'क्यों दादा, क्या बड़बड़ा रहे थे तब? एक बार फिर से बोलो, तो जरा तुम्हें सीधा कर दूं।'

वह सज्जन लड़के के हाथ से अपना कमीज छुड़ाकर मानो कुछ कहने जा रहे थे, कि तभी लड़का फिर बोल उठा, 'शाम को तो अपनी पोती के उम्र की छोंड़िया को लेकर मौज उड़ाओगे और अब बस में चढ़कर शराफत की दुम बनते हो!'

और उस सज्जन की कनपटी पर एक जोरदार घूंसा पड़ा। अगल-बगल खड़े लोग सिमककर खड़े हो गये। अब तक जो लोग लड़कियों की सीट से सटकर खड़े थे और वहां से तिल भर भी हिलने को तैयार नहीं थे, वे पलक झपकते ही खिसककर आगे की ओर चले गये। सभी चुप थे। कोई कुछ भी बात नहीं कर रहा था। ऑफिस में जो लोग अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर रौब झाड़कर, डांटकर, अपनी पोजीशन ठीक रखने की कोशिश करते हैं, इस वक्त वे भी बिल्कुल निरीह बने एक तरफ खामोश खड़े थे।

बहुत-से तो अपना-अपना स्टॉपेज आने से पहले ही उतर पड़े। मेरा समस्त अस्तित्व विरोध करने की तीव्र इच्छा से अस्थिर हो उठा, लेकिन साथ-साथ भय भी लगा।

अब हमारा सहारा सिर्फ भय ही रह गया है। मन में तीव्र क्रोध, असह्य जलन लेकर भी सिर्फ डर से चुप रहते हैं हमलोग। हमारे इस डरपोक अस्तित्व को पहचानकर एक दल हमारा अपमान करता है, हमें हेय समझता है।

दुकान पर पहुंचकर किसी वस्तु की अविश्वसनीय रूप से अधिक कीमत देखकर जब मैं कहती हूं, 'वाह, अभी उसी दिन तो आपके बगलवाली दुकान से बहुत कम में ले गयी थी।'

तो दुकानदार मौन साधे ही मेरे हाथ से वह वस्तु लेकर रख देता है और मेरी पूर्णतः उपेक्षा कर दूसरे ग्राहक से बात करने लगता है। मैं अपमान को चुपचाप हजम कर वहां से चली आती हूं।

सुबह से ही पानी बरस रहा है। ऑफिस की छुट्टी हुई उस वक्त सड़क पर घुटनों तक पानी भरा हुआ था। टैक्सियां खाली होते हुए भी आवाज को अनसुनी कर आगे बढ़ जाती हैं। आखिर एक रुकी भी तो ड्राइवर ने महाराजा की तरह रौबदार स्वर में पूछा, 'किस तरफ जायेंगी आप ? लेकिन नॉर्थ में नहीं जाऊंगा मैं।' मैं बात का जवाब दिये बिना चुपचाप टैक्सी में जा बैठी। उसके बाद आवाज में तेजी लाकर डांटने के अन्दाज में कहा, 'पहले से ही इतनी जिरह क्यों करते हैं आप ? कहां जाना है, कहां नहीं, यह टैक्सी में बैठने के बाद पूछना चाहिए।'

'आप गरम क्यों हो रही हैं ? मैं नॉर्थ में नहीं जाऊंगा, यही तो कह रहा हूं।'

'मैं भी तो सुनूं कि क्यों नहीं जायेंगे ? पैसेंजर क्या आप जहां ले जाना चाहेंगे वहां जायेंगे ?'

ड्राइवर ने क्षण भर मेरी ओर जलती निगाहों से देखकर कहा, 'आप उतर जाइये। मेरी गाड़ी खराब है; नहीं जायेगी।'

मेरे तन-बदन में आग लग गई लेकिन अगले ही क्षण एक अनजाने भय-वश मेरा हृदय कांप उठा और मैं टैक्सी का गेट खोलकर बाहर निकल आयी। टैक्सी पल भर में ही अदृश्य हो गई।

मन में इतना विक्षोभ, असहनीय ज्वाला तथा पीड़ा लेकर पता नहीं हम क्या ढूंढ रहे हैं ? शायद एक सीढ़ी ढूंढ़ते हैं—ऊपर उठने की सीढ़ी जो हमें किसी प्रकार भी नहीं मिल रही है। और नहीं मिल रही है इसीलिये हम विक्षुब्ध हो रहे हैं। सब कुछ तोड़-फोड़कर चूर-चूर कर देना चाहते हैं। दरअसल, हमारे सफल बनने में बाधक कौन है, यही हम नहीं समझ पा रहे हैं। इसीलिये हम गुमराह हो गये हैं। सब कुछ खो बैठे हैं।

रतन सेठ कहते हैं, 'यह सब पागलपन के सिवाय कुछ नहीं है। मनकी इच्छित वस्तु नहीं पाने के कारण ही यह सब कमजोर है। अगर मनुष्य सुख से स्वच्छन्द रह सके तो फिर उसे और क्या चाहिये ?....'

यह सब बेकार की बातें हैं। मैं ऐसा नहीं मानता। विश्वास नहीं करता। अगर यही बात होती, तो फिर अमल सुदीप्ता के साथ इस तरह....अमल तो बड़े बाप का बेटा है। पढ़ा-लिखा है। ऑफिस में अच्छी नौकरी करता है। फिर भी सुमंत से उस दिन पूछ रहा था, 'तेरे जान-पहचान की कोई अच्छी-सी लड़की-वड़की है क्या ? हो तो यार हमारे लिये भी देख न किसी एक को ! शाम का वक्त काटे नहीं कटता।'

'कैसी बात करते हो, यार ? सुदीप्ता के होते तुम्हारा समय नहीं कटता ? वह कहाँ गई ?'

'गोली मारो सुदीप्ता को। पिण्ड छुड़ा लिया है मैंने तो उससे।'

'तो तू उससे शादी नहीं करेगा ? तुम लोगों में तो प्यार....?'

'डेम गुड, यह प्यार-व्यार सब बेकार की बातें हैं। बैक-डेटेड। समझे ?'

□

सारी बातें देवाशिष से कहीं मैंने। पहले तो वह अन्यमनस्क-सा हो गया। एक अलग स्पर्श देकर उस सारे मूड को मेरे मन से हटा देने के लिये उसकी आँखों की पुतलियों में एक तृष्णा जाग उठी, पर उसने खुद पर काबू पा लिया। अपनी इस वासना का रुख उसने शुभ और सुन्दर की ओर मोड़ दिया। पूरे आत्म-विश्वास से वह बोला, 'प्रेम, श्रद्धा, चाहत किसी जमाने की सीमा में बंधकर नहीं रहते। कितने ही युग, कितने ही जीवन, कितने ही जन्मों को स्पर्श कर-करके प्रेम विराट् होता है। चन्दन के प्रलेप की तरह प्यार समूची जलन को शीतल कर देता है। प्यार बरसात की बूंद की तरह पवित्र है। एक अन्य प्रकार की विशुद्ध भावना है। एक अनिर्वचनीय आनन्द है।'

देवाशिष ने विभोर होकर मुझे अपने निकट खींच लिया। मैं उसकी शाम की गेरुई आभा को निहार रही थी। विक्टोरिया मेमोरियल की हरियाली जमीन पर उतरती शाम की ओर देख रही थी। मेरे होंठों पर मुस्कराहट फैल गई।

देवाशिष इशारा समझ गया। उसने खुद को अलग कर लिया, तथा आकाश

में गंभीरता भरते हुए बोला, 'अपराजिता, क्या तुम नहीं जानती कि प्रेम को बहुत तपा-तपाकर, गहरी ममता से सींच-सींचकर, हृदयरूपी घर में उसका यत्नपूर्वक लालन-पालन करना पड़ता है?'

'जानती हूं। और जानती हूं इसीलिये तो मैं गुमराह नहीं हुई हूं। मैं भटके हुए राही की तरह पथ नहीं ढूंढ़ती हूं। कदम-कदम गंतव्य की ओर बढ़ती जा रही हूं तथा बढ़ती जाऊंगी।

'मेरा यह विश्वास है कि एक दिन ऐसा ही एक घर हम जरूर ढूंढ़ लेंगे जिसकी खुली खिड़की से उन्मुक्त प्रकाश भीतर आयेगा; और हमारे मन को, हमारी देह को आलोकित करेगा। तब मैं देवाशिष में खुद को विलीन करके कभी न खत्म होनेवाला सुख पाऊंगी। जीवन की अंतिम सांस तक हम लोग निर्मल, पवित्र ज्योत्स्ना-रश्मि की तरह विहसते रहेंगे। रात-दिन के इस बोझ को हटाकर हम किसी-न-किसी दिन वैसा ही घर जरूर ढूढ़ लेंगे। हमारे प्यार का यह शुभ फल हमें जरूर मिलेगा।'

देवाशिष के समूचे चेहरे पर मुग्धता की मधुर किरणें फैल गईं। मेरे हाथ को उसने कसकर पकड़ लिया। मेरी आंखों से अपनी आंखें हटाकर उसने अपने चंचल होते मन पर काबू किया।

मुझे बहुत अच्छा लगा। जीवन में ऐसी बहुत-सी आकांक्षाएं है जो हाथ पसार कर मांगी नहीं जा सकतीं। सिर्फ अनुभव से प्राप्त की जाती हैं। यह बात देवाशिष जानता है।

जाड़े की शाम ने बहुत जल्दी ही आस-पास के लोगों को छाया का रूप दे दिया। हम उठ खड़े हुए। दूर-दूर बत्तियां जल रही थीं। धीरे-धीरे नर्म घास पर कदम बढ़ाते हुए हम प्रकाश की ओर बढ़ गये।

■ ■ ■

शहीद की मां

समरेश बसु

• • •

मानो शरीर में कंपकंपी की लहर उठी है। विमला ने आंखें मूंद लीं। विमला ने स्पष्ट महसूस किया जैसे उसके पेट के भीतर कुछ हिल-डुल रहा है। उसने आंख मूंदकर, एक होंठ को दूसरे होंठ से कसकर दबा लिया और पेट में हिलते-डुलते अहसास को पूर्णतया महसूस करना चाहा। उसके सामने चूल्हे पर सब्जी रखी हुई है। सब्जी में पानी नहीं है अतः चड़-चड़ की आवाज होने लगी है। शायद थोड़ी देर न सम्हाले तो कड़ाही में चिपककर सारी सब्जी जल जायेगी। लेकिन फिर भी विमला हिलने में असमर्थ है। अपनी समस्त अनुभूति बटोरकर उसने कानों में सीमित कर ली और अपने गर्भ की आवाज सुनने की कोशिश करने लगी। उसे महसूस हुआ मानो उसके दिल की धड़कन में निःशब्द ही बादल का नाम गूंजने लगा है, 'बादल, बादल, तू ही है न !'..... दूसरे ही क्षण उसका शरीर एक बार और कांप उठा। वह जोर-जोर से सांस लेने लगी। फिर आंखें खोल, चूल्हे पर सब्जी की कड़ाही की

ओर देखकर वह वहां से उठ खड़ी हुई। उसकी आंखों में बहुत ही व्याकुलता भरा भाव तैर रहा था। कानों को और अधिक सतर्क बना वह बाहर की आहट लेने लगी। उसके बाद दरवाजे की ओर कदम बढ़ाने ही वाली थी कि वहीं ठिठक गई। सब्जी योंही छोड़ गई तो एकदम जल जायेगी। एक बार चूल्हे पर चढ़ी सब्जी की ओर देखा उसने, लेकिन खड़े रहने की ताकत नहीं थी उसमें। परेशान हो वह बाहर निकल आयी कि, होने दो, खराब होती है तो खराब होने दो। कच्ची रहे, जल जाये, या राख हो जाये, मुझसे अब नहीं सम्हाला जायेगा।

आकाश में गहरे बादल छाये हुए थे, जोरों की हवा चल रही थी। आंगन के कोने में लगा सफेद फूल का पेड़ हवा के तेज झोंकों से एकदम झुक गया था। एक शाल के पौधे की भी अब झुका, तब झुका, वाली हालत हो रही थी। घर बिल्कुल सुनसान था। लकड़ी के फ्रेम में मंढी टिन की पत्तर से बनाई घर की दीवारें और टिन की ही छत थी घर की। ऐसा लग रहा था मानो घर में कोई भी नहीं है फिर भी विमला बहुत ही कदम दबा-दबाकर चलती हुई आंगन मे आई। बगल के मकान में कना की मां किसी से कुछ कह रही थी। विमला ने नागफनी की बाड़ को पारकर एक बार उस तरफ देखा। यहा से कना की मां का घर तो दिखाई पड़ता है, लेकिन उसमें रहनेवाले नहीं दीखते। उसने एक बार फिर उस घर की ओर देखा पर उधर किसी की भी आहट नहीं मिली। हवा से उसके बाल उड़-उड़कर आंखों पर आ रहे थे। दूर से देखने पर बाल काले लगते थे लेकिन वस्तुतः सफेद होने शुरू हो गये थे। चौड़ी मांग में सिंदूर का बासी निशान था। हाथ में बदरंग शांखा एवं नोया (बंगाली महिलाओं की सुहाग-चिन्ह स्वरूप पहनी शंख एवं लोहे की चूड़ी) तथा सोने की कुछ चूड़ियां पहन रखी थीं उसने। लहंगे पर तांत की बुनी कत्थई बॉर्डरवाली सफेद साड़ी पहन रखी थी। साड़ी मैली हो रही थी। जगह-जगह हल्दी के धब्बे लगे हुए थे। इस प्रौढ़ अवस्था में भी शरीर का कसाव बरकरार था। चेहरे पर पड़ी रेखाओं से ही उम्र का अहसास होता है, फिर भी इस समय का चेहरा देखकर ही पता लग जाता है कि जवानी में खूबसूरत रही होगी। उसका चौड़ा शरीर कठोर एवं कसा हुआ है।

विमला कुछ पल आंगन में ही खड़ी रही। फिर सामने की ओर से न जाकर रसोईघर के पीछेवाले रास्ते से गई। नागफनी की बाड़ के सहारे-सहारे मकान

के पिछवाड़ेवाले रास्ते पर वह आगे बढ़ती ही गई। घर के पिछवाड़े के सभी घरों के खिड़की-दरवाजे बन्द थे। जिस जगह मकानों की सीमा खत्म होती है वहां कोने में एक जवा फूल का पौधा है। विमला वहीं खड़ी रह गई। सामने सड़क है जो उत्तर-दक्षिण की ओर लम्बी चली गई है। कॉलोनी की सड़क है अतः पक्की नहीं है। विमला ने उत्तर की ओर देखा। उत्तर की ओर का रास्ता जिस जगह से पश्चिम की ओर मुड़ता है उसी ओर देखा। उस जगह मोड़ के एक किनारे कुछ ईंटें अभी तक पड़ी हैं। वहां शहीद-वेदी बनी थी। इन कुछ महीनों में टूटते-टूटते सभी ईंटें बिखर गई हैं। अब तो वहां कुछ गिनी-गिनी ईंटें ही बची हैं। इन्हें भी कोई उठाकर ले जायेगा तो शहीद-स्मारक का कोई भी निशान नहीं बचेगा। वेदी किसने तोड़ी और उसकी ईंटें कहां गईं, किसी को भी पता नहीं। विमला देखा करती थी कि, शुरू-शुरू में एक कुत्ता स्मारक से बिलकुल सटकर सोया करता था। पर अब वह भी नहीं दीखता। गिनती की ईंटों के अलावा अब वहां कुछ भी नहीं है।

विमला ने गर्दन हिला दी, साथ ही उसके होंठ भी बड़बड़ा उठे, 'नहीं, बादल नहीं है वहां।' बादल को श्मशान में ही जलाया गया था। तीन महीने के करीब हुए होंगे, जब यह स्मारक तैयार किया गया था तब वे लोग विमला को बुलाने आये थे। बादल की मां थी विमला। एक शहीद की मां। इसी-लिये वे लोग बुलाने आये थे—बादल के मित्र, उसकी पार्टी के लड़के। पर वे लोग सिर्फ विमला को ही बुलाने आये थे। इस घर के और किसी भी सदस्य को नहीं बुलाया था उन्होंने। न तो बादल के पिता को और न उसके दोनों बड़े भाइयों को। बादल का पिता हरप्रसाद किसी दूसरी पार्टी का आदमी है। इसके अलावा, दोनों बड़े भाई कृपाल और दयाल भी अलग-अलग पार्टियों के मेम्बर हैं। घर के चार मर्द और चार पार्टियों के मेम्बर। अतः बादल की पार्टी के लोग सिर्फ विमला को ही बुलाने आये थे। शहीद की मां को।

विमला वहां गई थी। वहीं, बस जरा-सी ही दूर तो है घर से। पश्चिमी मोड़ पर, सड़क के किनारे, वहीं जहां अब सिर्फ कुछ ईंटें ही बची हैं। शहीद स्मा-रक की अंतिम निशानी। विमला वहां किसलिये गई थी, यह उसे पता नहीं है। बादल की पार्टी के लड़कों ने आकर कहा था, 'मौसी, आपको एक बार

वहां चलना पड़ेगा।' विमला उदासी की प्रतिमूर्ति बनी वहां गई थी। उसके दो दिन पहले ही तो उसके अट्ठारह वर्ष के बेटे को किसी ने इसी जगह पीट-पीटकर मार डाला था। वह दृश्य इस समय भी विमला की आंखों के सामने मानो स्पष्ट घूम रहा है। बादल लहू-लुहान था। मुंह, सिर एवं शरीर के विभिन्न अंगों पर खून बह-बहकर जम गया था। उसकी पार्टी के लड़के ही मृत बादल को उठाकर उसके घर के आंगन तक ले आये थे। बादल सबसे छोटा बेटा था, पर अंतिम संतान नहीं था। उसके बाद भी दो हुए थे पर जीवित नहीं रहे। अतः अब बादल के बाद की और कोई संतान नहीं है।

बादल को इस हालत में देखकर विमला चीख मारकर उस पर गिर पड़ी थी तथा बादल को जकड़कर रोने लगी थी। वह रोती-रोती कहती जाती थी, 'ऐसी बुरी मार किसने मारी रे तुझे ? अरे बादल रे, बादल बेटे !'····बाहर के लोगों से घर का आंगन खचाखच भर गया था उस वक्त। कुछ देर बाद वे लोग बादल की अर्थी फूल-मालाओं से सजाकर उसे ले गये थे। लेकिन श्मशान-यात्रा के दौरान 'हरि बोल' का उच्चारण न कर स्लोगन कहे थे' 'कामरेड बादल जिन्दाबाद ! खून का बदला खून !'···· उसके बाद तो विमला खुलकर रो भी नहीं सकी। बस, कारण-अकारण, समय-असमय आंखों से आंसू बहने लग जाते। तब वह अपने आंसुओं को पोंछ लेती।

दो दिन बाद ही स्मारक तैयार किया गया। जिस दिन बादल का खून हुआ था उस दिन कॉलोनी के मैदान में एक सभा हुई थी। वह सभा बादल की पार्टी के लोगों की नहीं थी, किसी अन्य दल की सभा थी। गड़बड़ की शुरुआत उसी जगह से हुई थी, हालांकि बिल्कुल सही बात कोई भी नहीं बता पाया। शाम के धुंधलके में किसी ने बादल का पीछा किया था। बादल घर की ओर दौड़ पड़ा था, लेकिन मोड़ को पारकर आगे नहीं बढ़ सका। कोई कहता है, बादल अकेला ही घर की ओर आ रहा था और उसका खूनी पहले से ही मोड़ पर छिपा उसका इन्तजार कर रहा था। इसी तरह की जितने मुंह, उतनी बातें सुनने में आ रही थीं। विमला की समझ में नहीं आता कि उनमें से किस बात को सच माने तथा किसको झूठ। बादल की चीख सुनकर लोग दौड़कर उसके पास पहुंचे थे, पर तब तक सारा खेल समाप्त हो चुका था। खून से लथ-पथ मृत बादल के अलावा शाम के धुंधलके में और कोई भी वहां दिखाई नहीं पड़ा। पुलिस भी आई थी। शायद

बादल की पार्टी ने कुछ लोगों के नाम बताये थे पर वे ढूंढने पर भी कहीं नहीं मिले। पुलिस किसी को भी गिरफ्तार नहीं कर सकी। हत्यारों के रूप में जिनका नाम पुलिस को बताया गया था उन पर मामला दायर किया गया था। वे सभी जमानत पर छूटकर निश्चिन्त घूम रहे हैं। केस चल रहा है। केस इस तरह चल रहा है मानो कुछ हुआ ही न हो।

बादल की हत्या के दो दिन बाद उसका स्मारक यानी शहीद-स्मारक तैयार हुआ था। इन दो दिनों में कुछ छोटे-मोटे दंगे भी हुए। एक दुकान को जलाकर राख कर दिया गया लेकिन क्यों, यह विमला को पता नहीं। विमला शहीद-स्मारक के पास क्यों गई थी यह भी उसे पता नहीं। वह तो वहां जाकर बस थोड़ी देर खड़ी रहकर आ गई थी। पन्द्रह-सोलह ईंटों को एक-के-ऊपर-एक रखकर, गारा-चूना लगाकर, खड़ा किया गया था। फिर चूने से उस पर सफेदी करके उस पर बादल का नाम लिखा गया था। उसके बाद विमला के चारों ओर खड़े होकर उन लड़कों ने वही एक ही स्लोगन बुलन्द किया था, 'कॉमरेड बादल जिन्दाबाद। खून का बदला खून·····' आदि-आदि। पता नहीं कौन था वह लड़का, उसने बादल का नाम ले-लेकर एक भाषण भी दिया था। उसकी वही सारी बातें विमला की समझ में नहीं आईं। समझ में क्या नहीं आई, पूरी बात मानो उसने सुनी ही नहीं। वह तो गहन दुःख में डूबी-सी खड़ी थी और उसी हालत में घर चली आई थी। घर आकर रसोईघर में जाकर खाना बनाने बैठ गई थी। घर में उस वक्त और कोई भी नहीं था। हरप्रसाद, कृपाल तथा दयाल आकर खाना खायेंगे, खाना बनाये बगैर काम कैसे चलेगा, अतः वह जिस दुःख की स्थिति में वहां गई थी उसी हालत में घर आकर खाना बनाने में जुट गई। घर किसी के साथ भी उसने बात नहीं की। कृपाल और दयाल से तो नहीं ही की, हरप्रसाद से भी बात नहीं की। हरप्रसाद खुद आकर रसोईघर के दरवाजे के पास खड़ा रहा था। फिर खुद से ही बोल रहा हो इस तरह बोला था, 'कितनी बार मना किया था कि उस दल से मेल-जोल मत बढ़ा, पर कोई बात सुने तब न!'

विमला ने कोई जवाब नहीं दिया। फिर भी हरप्रसाद वहीं खड़े रहे। थोड़ी देर चुप खड़े रहने के पश्चात् एक लम्बी सांस लेते हुए बोले, 'यहां की ये सब पार्टियां सिवाय खून-खराबे के और कुछ भी नहीं जानतीं। इन्हें कोई

मतलब नहीं किसी से। जिसका गया, उसका गया। ये थोड़े ही देखने आयेंगे। अब बादल वापस तो आने से रहा।'

इसके बाद हरप्रसाद चुप रह गये थे। पर विमला ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया। वह तो चूल्हे की तरफ झुकी हुई बैठी थी। हरप्रसाद ने फिर एक गहरी सांस भरकर कहा, 'जो कुछ होना था सो हो गया। अब मन को मजबूत रखो। इसके अलावा और चारा ही क्या है, तुम्हीं बताओ? मुझे देर हो गई, मैं ऑफिस जा रहा हूं। खाने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं है।'

हरप्रसाद चले गये थे। बस, उस दिन के बाद और कोई बात नहीं हुई। इन तीन महीनों में कभी-कभार कुछ कहते भी तो बस यही कि, 'मन को मजबूत कर; धीरज धर; बादल तो अब लौटकर आयेगा नहीं।'

विमला हरप्रसाद की बातों का कोई जवाब नहीं देती। वह पति से सिर्फ गृहस्थी-सम्बन्धी आवश्यकताओं की बात ही किया करती। बादल के विषय में कोई भी बात नहीं करती। कृपाल और दयाल ने तो अपनी ओर से ही विमला से बादल सम्बन्धी कोई चर्चा नहीं की। कृपाल नौकरी करता है। दयाल बेकार है। वे दोनों अलग-अलग दल के आदमी हैं। घर में वे दोनों आपस में बहुत कम बातें किया करते। गमछा, तेल, साबुन आदि मांगने, नहाने आदि की बातें ही करते। इसके अलावा नाटक या सिनेमा तक की बात भी नहीं करते। अपने दल की बात तो बिल्कुल ही नहीं करते। विमला से तो भूख लगने पर सिर्फ खाना मांगते। इसके अलावा, घर में क्या सामान लाना है यह भी पूछ लेते, पर बादल के विषय में एक शब्द भी मुंह से नहीं निकालते, मानो उनका भाई नहीं मरा, कोई और ही मरा है। मानो किसी दूसरी पार्टी का, जो उनकी नहीं थी, कोई सदस्य मर गया हो। शायद अपनी पार्टी के लोगों से इस बारे में बात करते हों, पर घर में तो किसी से भी कोई भी बात नहीं करता।

विमला जवाकुसुम के पेड़ से सटकर खड़ी, टूटी हुई वेदी की ओर देख रही थी। नहीं, बादल वहां नहीं है। बादल को श्मशान में जला दिया गया है। पर आज बादल विमला के सारे शरीर में जीवित है। आज श्रावण की उन्नीस तारीख है। ग्यारह बजे हैं। अट्ठारह साल पहले इसी दिन, इसी समय, बादल पृथ्वी पर आने के लिये विमला के पेट में छटपटा उठा था।

□

उस वक्त घर में और कोई नहीं था। विमला एकदम अकेली थी। पूर्ण-गर्भा विमला....बादल किसी भी क्षण पैदा हो सकता था। ठीक इसी समय दर्द उठने शुरू हुए थे। डॉक्टर, वैद्य की आवश्यकता तो थी नहीं। विमला बिल्कुल निःशंक थी। यह समझ गई थी कि यह दर्द निष्फल दर्द नहीं है। उसके शरीर की प्रत्येक अनुभूति से अभिज्ञता भरी थी। दर्द उठते ही वह समझ गई थी कि यह व्यथा, यह दर्द, निष्फल नहीं जायेगा। समय निकट था। अट्ठारह साल पहले इसी दिन, इसी समय, मूसलाधार बरसात हो रही थी। इस तरह अकेले रहना उचित नहीं था ऐसी हालत में। किसी तरह विमला बगल के मकान तक कना की मा के पास गई थी। दर्द से कराहते हुए विमला ने चुप-चुप ही कना की मां को स्थिति से अवगत कराया। बोली, 'दीदी, अब एकदम समय नहीं है।'

सुनते ही कना की मा अपने घर का सारा काम छोड़ शीघ्रता से विमला के साथ चली आई थी। उस वक्त कना छः-सात साल की थी। उसको भेजकर, मेघू की विधवा बुढ़िया मा को, जो जचगी करवाया करती थी, बुलवा लिया। आजकल की तरह ढोल-ढमाके नहीं पीटे जाते थे उन दिनों। मेघू की मां ही बच्चा जनवाया करती थी। बुढ़िया तुरन्त ही आ गई थी। उसने विमला की जांच की और बोली, 'हां, दर्द तो असली है। अब अधिक देर नहीं है।'

कना की मा ने उसी वक्त रसोईघर खाली कर लिया। उसी रसोईघर में बादल पैदा हुआ था। उस वक्त इस घर की हालत कुछ और ही थी। टिन की दीवारें नहीं थी, फर्श भी पक्का नहीं था। टट्टर की दीवारें थीं। हां, छत उस समय भी टिन की थी। फर्श कच्चा था। विमला रसोईघर में चटाई पर कभी लेटती, कभी बैठती, दर्द की तीव्रता को सहन कर रही थी। कना की मां की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। वह इस तरह घबरा रही थी मानो उसी को दर्द उठ रहे हों। विमला दम साधे दर्द सहन कर रही थी। दांत-पर-दांत भींचकर खुद को स्थिर रखने की कोशिश कर रही थी। दर्द सहन करते-करते सोच रही थी—लड़का होगा या लड़की। हरप्रसाद की इच्छा थी कि लड़की हो, विमला की भी यही इच्छा थी। दो लड़कों के बाद एक लड़की ही होनी चाहिये। पर उसकी अन्तिम कराह के साथ जो भूमिष्ट हुआ वह लड़का था। मेघू की मा ने दोनों हाथों से विमला का पेट दबाकर पकड़ रखा था क्योंकि अभी तक नाल नहीं गिरी थी। विमला एक बार फिर

इसी प्रकार के दर्द की अपेक्षा कर रही थी। उसी बीच उसने अपने शिशु की ओर भी एक नजर डाली थी। ताजा खून से लाल-लाल एक शिशु। उसके गले से तब तक रुलाई भी नहीं फूटी थी। बहुत धीमी कराह-सी ही निकल रही थी शिशु के गले से। पर ज्योंही नाल गिरी, शिशु सप्तम स्वर में चीख उठा, 'उवां, उवां, उवां!'

नाड़ी काटते-काटते मेघू की मां ने कहा था, 'वाप रे, कितना बड़ा छोरा है! मानो पेट से ही एक साल का निकला है। देखकर लगता है, चेहरा मां पर गया है।'

क्या कहा, मां पर गया है? विमला ने फिर एक बार शिशु की ओर देखा। पर उसकी समझ में नहीं आया कि बच्चा किस पर गया है। मेघू की मां की गोद में बच्चे को देखते-देखते अचानक विमला को अपनी गोद बहुत खाली-खाली महसूस हुई। लड़की नहीं है तो क्या हुआ, अपने ही शरीर का एक हिस्सा है, गोद में लेने को तो जी ललकता ही है। पर यह बात मेघू की मां से नहीं कह सकी थी वह। मन-ही-मन बोली थी, 'मां पर गये बेटे, तुम हमेशा सुखी रहो।'

बाहर मूसलाधार बरसात हो रही थी। कना की मां ने विमला को सहारा लगाकर बैठाया था। दूध गरम करके पिलाया था। मेघू की मां ने नवजात शिशु को गरम पानी से पोंछकर साफ किया और गुदड़ी में लपेटकर विमला की गोद में देकर कहा, 'समझ गयी, मूसलाधार पानी साथ लेकर आया है, बाप के इसी तरह धन बरसेगा। बाप रे, कैसा बादलिया लड़का है! दुनिया डूब जानेवाली बरसात साथ लाया है।'

रसोईघर की हालत बहुत अच्छी नहीं थी उस वक्त। अब तो पक्का आंगन है, पर उस समय कच्चा फर्श तथा टिन की छत थी जो जगह-जगह से टप-टप टपक रही थी। नवजात शिशु को छाती में छिपाये एक सूखा कोना देख वहां सो रही थी विमला।

नवजात शिशु को परिचित कराने के लिए विमला ने अपना स्तन उसके मुंह से छुआ रखा था, तथा उसके मुंह की ओर देखते हुए सोच रही थी, पता नहीं, यह कैसा निकलेगा? यही सब सोचते-सोचते उसने बालक को और भी करीब कर छाती से चिपका लिया। मेघू की मां ने कहा था, मां पर गया है,

मन. बहुत शैतान होगा यह बालक ! 'क्यों रे, शैतानी कर तू भी मेरा जी जलायेगा क्या ?'

इतना कह बिमला हंस दी थी। फिर बोली थी, 'अगर शैतानी करेगा तो पीटूंगी।'

बिमला के इतना कहते ही नवजात शिशु रो पड़ा था। बिमला को हंसी आई थी। बोली, 'अभी थोड़े ही पीट रही हूं, अभी से क्यों रो रहा है ? बड़ा हो, कोई शैतानी कर, फिर देखूंगी तुझे।'

बिमला को एक-एक बात याद है। कुछ भी नहीं भूली है वह, मानो कल की ही बात हो। कृपाल, दयाल के जन्म की भी एक-एक बात याद है बिमला को। वे तो अपने देश में पद्मा के उस पार जन्मे थे। बादल इसी घर में जन्मा था।

शाम को जब हरप्रसाद घर लौटे थे, तो जच्चा-घर के बाहर ही खड़े होकर, खखारकर, अपने आने की सूचना दी थी। दरवाजा भीतर से बन्द था। बिमला ने सेपू की मां से कहा, 'इनके पिता आये हैं, दरवाजा खोल दे।' सेपू की मां ने दरवाजा खोल दिया था। हरप्रसाद ने बिमला से पूछा, 'कैसी हो तुम ?'

बिमला ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ लालटेन की रोशनी में बच्चे को आगे करके दिखा दिया था। हरप्रसाद ने 'हूं' की आवाज कर कहा था, 'तुम्हारा बेटा तो बहुत खूबसूरत दीखता है।'

बाप का खुशी से चमकता चेहरा देखकर ही समझा जा सकता था कि वे बहुत खुश हुए थे। बिमला का चेहरा गर्व से दमक उठा था। उसने सोचा, 'इतना खूबसूरत बेटा पाकर हरप्रसाद को बेटी न होने का अफसोस नहीं है।' सेपू की मां ने कहा था, 'बेटा जबर्दस्त बादल-वाली भाग्य लाया है। एकदम बादला लड़का है।' अत. नाम-संस्कार उसी समय कर दिया गया था।

◻

आज वही दिन था। ग्यारह साल पहले का वही दिन था आज। ग्यारह बरस गये हैं। बिमला आज सूखकर खामोश खड़ी, रह-रहकर सिहर उठती थी। उसे ऐसा लग रहा था मानो पेट में कुछ हिल-डुल रहा है। पेट से बादल है ? बादल ! एक कोने में जवाकुसुम से सटकर खड़ी है बिमला। हटे हु

शहीद-स्मारक की ओर देखकर उसने आंखें मूंद लीं। हां-हां, फिर, फिर वैसा ही लग रहा है मानो पेट में भ्रूण हिल-डुल रहा है। होठों को भींचकर, दोनों हाथ छाती के पास इकट्ठे कर लिये उसने। अब यह सब क्या हो रहा है? फिर ऐसा क्यों लग रहा है? संतान पैदा करने की शक्ति तो उसकी बहुत दिनों पहले लुप्त हो चुकी है। आज यह कौन है जो उसके गर्भ में इस तरह उछल रहा है? तो क्या बादल उसके शरीर में ही व्याप्त है? वह मन-ही-मन बादल को आवाज देने लगी, 'बादल, बादल!'

'मां, मां, ओ मां!'

कृपाल आवाज दे रहा था। विमला ने कोई जवाब नहीं दिया। न ही वहां से हिली। वह जहां खड़ी थी, जैसे खड़ी थी, वैसे ही वहीं खड़ी रही। उसका चेहरा कठोर हो गया। सारा शरीर कड़ा हो गया। नजरें टूटी हुई शहीद-वेदी पर जमी थीं। अपने बच्चों की पुकार का जवाब दिये बिना आज तक कभी नहीं रह सकी है वह, पर आज उसके मुंह से आवाज ही नहीं निकल रही थी। आज वह किसी की बात का जवाब नहीं देगी।

वहां खड़े-खड़े विमला को अपने बच्चों के बचपन की बातें याद आने लगीं। बचपन में कृपाल एवं दयाल दोनों आपस में बहुत झगड़ते थे पर बादल पर दोनों ही जान छिड़कते थे। वे दोनों बराबर से ही थे उम्र में, इसलिये झगड़ा करते थे पर बादल उन दोनों से बहुत छोटा था। बादल को दिये बिना दोनों भाई कुछ भी मुंह में नहीं डालते थे। जब बादल ने बोलना सीखा तो कृपाल और दयाल दोनों ने उससे पूछा था कि वह किसे अधिक चाहता है? पर बादल भी कम लालची नहीं था। वह किसी भाई को भी खुद से दूर नहीं करना चाहता, अतः दोनों को चाहने की बात कहा करता था। छोटे-से बच्चे की चालाकी पर विमला मन-ही-मन हंसा करती थी।

धीरे-धीरे कृपाल और दयाल बड़े हुए। साथ ही बादल भी बड़ा होने लगा। लड़के जैसे-जैसे बड़े होने लगे वैसे-वैसे उनका स्वभाव न जाने कैसा तो होता गया। बादल को अब अपने बड़े भाइयों का सान्निध्य पहले जितना नहीं मिलता था, क्योंकि अब वे घर से बाहर अधिक व्यस्त रहने लगे थे। धीरे-धीरे बादल ने भी अपना रास्ता चुन लिया। उसके भी अलग दोस्त थे, अलग खेल-कूद होता था। पर इस परिवर्तन से विमला को विशेष चिन्ता नहीं हुई थी। उसने सोचा, लड़के बड़े होंगे तो परिवर्तन तो आयेगा ही उनके

स्वभाव में।

पर लड़कों की इन सब हरकतों से चिन्ता हो रही थी तो हरप्रसाद को। उन्हें सबसे अधिक कृपाल और दयाल पर गुस्सा आता था। विमला ने हरप्रसाद के मुंह से ही सुना था कि दोनों बड़े लड़के कॉलेज जाते तो हैं पढ़ने के लिए, पर वहां जाकर वे राजनीति करते हैं। विमला सोचती, सभी छात्र तो ऐसा करते हैं, फिर कृपाल और दयाल का क्या दोष है? वह कहती, 'कॉलेज में जाकर ये लोग क्या करते हैं क्या नहीं, हमें इन बातों में दिमाग लगाने से क्या लाभ?'

हरप्रसाद कहते, 'सिर्फ राजनीति में ही पड़ते तो भी विशेष चिन्तित होने की बात नहीं थी, पर राजनीति के नाम पर ये लोग गुन्डागर्दी करते हैं। मेरे पैसों से कॉलेज में पढ़कर यह सब नहीं चलेगा। यह बात तू अपने बेटों को अच्छी तरह समझा दे।'

हरप्रसाद के बात करने के ढंग से विमला को मन-ही-मन बुरा लगता लेकिन फिर वह सोचती, बच्चों को बाप के कहने में ही चलना चाहिये, अतः कृपाल और दयाल से उसने कह दिया था, 'बेटा, तुमलोग कॉलेज में पढ़ने के लिये जाते हो। वहां जाकर तुमलोग यह सब क्या धंधे करते हो? तुम्हारे पिताजी को तुम्हारे ये ढंग जरा भी पसन्द नहीं हैं।'

उन दोनों का एक ही जवाब था, 'यह सब तुम्हारी समझ में नहीं आयेगा, मां।'

सिर्फ बादल की ओर से उस समय तक किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। हरप्रसाद को भी उससे कोई शिकायत नहीं थी। बादल को अधिक लगाव मां से ही था, बाप से नहीं। घर के काम में मां को वही सहारा लगाया करता था यद्यपि करता था बक-झक करने पर ही।

◘

जमाना धीरे-धीरे बदल रहा था।
सर्वप्रथम हरप्रसाद का गुस्सा बड़े बेटे कृपाल पर निकला था। बाहर का विरोध घर में आ पहुंचा। सिर्फ सहन करके ही मामला ठंडा नहीं होता। हरप्रसाद क्रुद्ध हो उठते बेटे पर। पर कृपाल भी पीछे नहीं रहता। वह जबानी बातों से बाप को पूरता रहता। आखिर विमला बीच में आकर कृपाल को

हटा ले जाती और कहती, 'चल उधर, बाप के मुंह पर इस तरह जवाब देता है, शर्म नहीं आती ?'

लेकिन विमला को हरप्रसाद पर भी कम क्रोध नहीं आता था। कृपाल कोई बाहरी व्यक्ति या दुश्मन तो नहीं था उनका। आखिर था तो बेटा ही, पर घर में दोनों को झगड़ते देखकर यही लगता था मानो दोनों एक-दूसरे के दुश्मन हों। सिर्फ कृपाल से ही नहीं, दयाल के साथ भी हरप्रसाद का वैसा ही व्यवहार था। विमला सोचती, दयाल और कृपाल एक ही दल में शामिल हैं।

पर विमला के इस भ्रम को टूटने में भी अधिक समय नहीं लगा था। उसने देखा कि दोनों भाइयों के बीच भी जमकर बहस होती है। यह विरोध घर में होने की वजह से तथा विमला की उपस्थिति की वजह से मार-पीट का रूप धारण नहीं कर सकता था। उसकी समझ में नहीं आता कि सब अलग-अलग दल में शामिल क्यों हैं ? वह सोचती, अगर सभी मिलकर एक दल बना लें तो सारा झगड़ा ही मिट जाय। पर उस वक्त घर में तीन दल थे, तथा चौथे दल में थे बादल और विमला। वैसे बादल भी बिल्कुल निरपेक्ष नहीं था। उसका अधिक झुकाव मंझले भाई दयाल की ओर था। वह कहता, मंझले भैया ठीक कहते हैं।'

विमला पूछती, 'कैसे ?'

बादल कहता, 'हमारी स्कूल के ऊंची क्लास के सभी लड़के मंझले भैया को बहुत मानते हैं। गेट पर खड़े होकर जब मंझले भैया भाषण देते हैं तब सभी लड़के हड़ताल करके क्लास से बाहर निकल आते हैं।'

'तो तू भी मंझले भैया की तरह ही बनेगा ?'

इस बात का बादल कोई जवाब नहीं देता। वह कहता, 'अभी से मैं यह कैसे कह सकता हूं ?'

विमला कहती, 'तू तो इन बखेड़ों में मत पड़ना। देखता नहीं, घर में कैसी अशांति रहती है !'

जैसे-जैसे समय गुजरता गया अशांति का रूप बदलता गया। अब हरप्रसाद, कृपाल, दयाल कोई भी किसी से आपस में बात नहीं करते। जब विमला खाना बना लेती तब वे चुपचाप बैठकर खा लेते। रात को अपने-अपने बिस्तर पर

पड़कर भी रहते। कई बार रात को कृपाल तथा दयाल घर पर नहीं रहते। उनकी पढ़ाई-लिखाई भी चौपट हो रही थी। कृपाल ने अपने लिये एक नौकरी का इन्तजाम कर लिया था। दयाल को भी नौकरी ढूंढने की फिक्र लगी थी। पढ़ाई तो अब होने से रही, लेकिन सिर्फ पार्टीबाजी से भी तो काम नहीं चलेगा। उसे भी एक नौकरी की सख्त जरूरत है।

इस बीच बादल भी बड़ा हो गया। जब वह क्लास दस में पढ़ रहा था तब उसे टाइफाइड हो गया था। विमला का कलेजा बादल की इस बीमारी से कांप उठा था। उसके मन में बुरे-बुरे खयाल आते रहते। वह सोचती, इतनी बड़ी उमर के उसने आज तक एक भी सन्तान नहीं खोई है। ऐसी भयानक बीमारी भी आज तक उसकी किसी सन्तान को नहीं हुई थी। तब देखा गया कि, कृपाल बीमार बादल के लिये डॉक्टर बुलाकर लाया था। दयाल बादल के सिरहाने बैठा उसके माथे पर बर्फ की थैली रख रहा था और उसकी टट्टी, खून, पेशाब आदि जांच करवाने को ले गया था। हरप्रसाद के चेहरे पर भी चिन्ता तथा उद्विग्नता की छाप थी। वे भी बादल के बिस्तर के पास बैठे रहते थे।

तब तक बादल ने कोई पार्टी ज्वाइन नहीं की थी। अगर कर लेता तो पता नहीं क्या हाल होता?

फिर विमला की आंखों के समक्ष श्मशान-यात्रा का दृश्य घूम गया। इसी घर के आंगन से खून से लथपथ तथा क्षत-विक्षत बादल की अर्थी उठी थी। बादल की लाश को उसके दोस्तों ने ही घेर रखा था। वे सब उसकी पार्टी के ही लड़के थे। कृपाल तथा दयाल तो वहां एक बार भी हाजिर तक नहीं हुए। शायद चाहकर भी खड़े नहीं हो सके थे। हरप्रसाद बुत बने खड़े थे। उनमें किसी ने एक भी शब्द नहीं कहा, उन्होंने भी किसी से कुछ नहीं कहा। बादल के दोस्तों ने ही उसकी अर्थी को कंधा देकर श्मशान तक पहुंचाया था। बाप ने, या भाइयों में से किसी ने नहीं। बादल की मृत देह दोस्तों के कंधों पर चढ़कर ही श्मशान पहुंची थी। हरप्रसाद चुप-चाप खड़े थे, तथा दोनों भाई तो घर में ही नहीं थे उस वक्त।

अगर टाइफाइड के समय बादल ने कोई पार्टी ज्वाइन कर ली होती तो पता नहीं क्या होता? श्मशान-यात्रा की तरह ही भाई तथा बाप सभी दूर-दूर रहते। पार्टी के सामने बाप, बेटे, भाई आदि किसी का कोई अस्तित्व न

है। उनका एकमात्र परिचय है बस पार्टी। यह कैसी पार्टीबाजी है, विमला की समझ में नहीं आता। वह तो गृहस्थी का बोझ सम्हालना जानती है, बस।

इसका मतलब पार्टी ही सब कुछ है। विमला की आंखों में क्रोध की अग्नि भभक उठती है एक पल के लिये। पल भर के लिये उसकी नजरें शहीद-वेदी पर से घूमकर घर की ओर मुड़ती है, मानो एक बार गर्दन घुमाकर वह अपने घर को देख लेने की कोशिश करती है।

'भई, सुनती हो ? कहां गई ?'

यह आवाज हरप्रसाद की थी। विमला को पुकार रहे थे। पर विमला ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने अपना चेहरा भी घुमा लिया उस ओर से। वह फिर से शहीद-स्मारक की ओर देखने लगी। उसे याद आया कि आज ऑफिसों की छुट्टी है; किस बात की छुट्टी है यह उसे याद नहीं आ रहा है। कृपाल, दयाल, हरप्रसाद कोई भी काम पर नहीं गये। पर कुछ भी हो, आज विमला किसी की बात का कोई जवाब नहीं देगी। आज, इस वक्त, वह जवाब देने में असमर्थ है। उसके पेट में पता नहीं क्या हो रहा है ? आज से अट्ठारह साल पहले, आज के ही दिन जैसा हुआ था, वैसा ही कुछ उसके शरीर में आज भी हो रहा है। उस स्मारक में भी नहीं है, श्मशान में भी नहीं है, बादल तो उसके पेट में ही है। अब वह फिर से इस धरती पर आने को मचल रहा है।

□

जब बादल टाइफाइड के चंगुल से छूटा था तब बहुत ही दुबला हो गया था। विमला का मन होता, छोटे बच्चे की तरह उसे अपनी गोद में ले ले। पढ़ाई का एक साल बरबाद हो गया था, पर उसकी कोई परवाह नहीं थी विमला को। लड़के की जान बच गई, यही बहुत है। अगर कृपाल या दयाल में से कोई बीमार होता तब भी विमला को उतना ही दुःख होता। उतनी ही चिन्ता होती। हरप्रसाद की छोटी-मोटी तकलीफ से भी विमला घबरा उठती है। मर्द लोग और चाहे जितने भी महत्वपूर्ण कार्य करते हों, पर अपने स्वास्थ्य की ओर से बहुत लापरवाह होते हैं। फिर हरप्रसाद ही तो एक-मात्र पालनहार था उस गृहस्थी का। विमला कभी भी पति की उपेक्षा नहीं करती।

बादल धीरे-धीरे बिल्कुल ठीक हो गया था। कमजोरी भी मिट गई पर स्वास्थ्य पहले जैसा नहीं रहा, हालांकि सुन्दर वह पहले से भी अधिक हो गया था। हमेशा से कम बोलने की आदत थी उसकी—बिल्कुल विमला की तरह। विमला बहुत कम बोलती है। उसकी गृहस्थी उसे अधिक बात करने का मौका ही नहीं देती। सारी गृहस्थी उसी के कंधों पर तो है। घर में खाना-पकाने और चौका-बर्तन के अलावा बाकी सारा काम वही करती है।

बादल कम बात किया करता था। विमला सोचती, कम-से-कम वह तो अपने भाइयों का रास्ता नहीं अपनायेगा। घर में तीन पार्टियां पहले से ही मौजूद थीं और किसी का भी किसी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं था। यहां तक कि बोलचाल भी बन्द है। बादल यह सब देखता ही है। सब समझता भी है, अतः वह उस रास्ते कभी नहीं जायेगा।

पर विमला ने गलत सोचा था। बादल के कॉलेज ज्वाइन करने से पहले ही विमला ने सुना कि बादल भी एक अन्य ही पार्टी में शामिल हो गया है। विमला ने पूछा, 'तू भी यही पार्टीबाजी करने में लग गया है?'

बादल कम बात करता था। उसने मां की बात का कोई जवाब नहीं दिया लेकिन हरप्रसाद ने उसे आड़े हाथों लिया था। जिस तरह उन्होंने कृपाल तथा दयाल के साथ झगड़ा किया था उसी तरह बादल को भी बहुत डराया धमकाया था। उन्होंने कहा, 'तू एक खूनी पार्टी में शामिल हुआ है?'

विमला स्तब्ध होकर सुन रही थी। बादल अपने हिसाब से कह रहा था, 'हमारी पार्टी, खूनी पार्टी नहीं है।'

हरप्रसाद ने चिल्लाकर कहा था, 'बिल्कुल है। खूनी पार्टी है यह। गुंडे बदमाश, लुच्चों के अलावा उस पार्टी में एक भी भला आदमी नहीं है। तू मुझे सिखाने की कोशिश मत कर।'

बादल ने कहा था, 'मैं किसी को कुछ नहीं सिखाता।'

विमला को लगा था कि वह इस बादल को नहीं पहचानती। वह शांत एवं दृढ़ स्वर में अपने बाप की बातों का जवाब दे रहा था। कृपाल एवं दयाल की तरह ऊंची आवाज में या चीखकर नहीं बोल रहा था। विमला चकित-सी खड़ी सोच रही थी, बादल ने इस ढंग से बात करना कब सीख लिया? मानो अचानक ही वह बहुत बड़ा हो गया है। सब ऊंच-नीच समझने लगा

है। विमला यह सब सोचकर चकित होने के साथ-साथ थोड़ी नाराज भी हुई थी मन-ही-मन। बादल भी बच्चों की तरह चिल्लाकर कुछ कहता तो शायद विमला को अधिक खुशी होती। हालांकि बादल के इस तरह बोलने के ढंग से विमला को कुछ-कुछ गर्व की अनुभूति भी हो रही थी।

लेकिन हरप्रसाद को तो बात करने का दूसरा कोई ढंग आता ही नहीं था। वे तो जिस तरह कृपाल तथा दयाल से कहा-सुनी करते, उसी तरह बादल को डांट रहे थे, 'यह सब मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। अगर तुझे इस घर में रहना है तो उस पार्टी को छोड़ना पड़ेगा।'

हरप्रसाद के बात करने का यह रवैया विमला को अच्छा नहीं लगता था। वह सोचती, बातों-बातों में ये सबको घर छोड़ने की धमकी क्यों देते हैं ? बादल ने अपने पिता की उस बात का कोई जवाब नहीं दिया था। बस, उनके सामने से हट गया था। हरप्रसाद मन-ही-मन बड़बड़ाते रहे थे, 'जो देश का निर्माण करना नहीं जानते, सिर्फ उसे बरबाद करना ही जानते हैं, उन्हें मैं अपने घर में नहीं रहने दूंगा। अगर अपना-अपना अलग रास्ता ही चुनना है तो—' बस इसी तरह बक-झक करते रहे थे। विमला भी हरप्रसाद के सामने से उस वक्त खिसक गई थी। यह आदमी सिर्फ बक-झक करना और डांटना ही जानता है। ऐसा तो कभी नहीं देखा कि ठंडे दिमाग से अपने बच्चों को कभी कुछ समझाया हो। जिस तरह कृपाल, दयाल से पेश आते रहे हैं उसी तरह अब बादल को भी डांटने लगे हैं।

विमला का हृदय सिर्फ अशांति एवं उद्वेग से ही भरपूर है। वह अक्सर झुंझला पड़ती। सोचती, दुनिया में इतनी चीजों के रहते पार्टीबाजी के पीछे ये लोग क्यों इतने दीवाने रहते हैं ? आखिर बादल भी उसी रास्ते चला गया जिस रास्ते उसके बाप और दो भाई गये हैं। उसने बादल से कुछ झुंझलाकर ही कहा, 'तुझे तो लिखने-पढ़ने और खेलने-खाने में मस्त रहना चाहिये। तू क्यों पार्टी-वार्टी के चक्कर में पड़ गया ?'

बादल ने बहुत ही शांत स्वर में जवाब दिया, 'मैं किसी को कोई नुकसान तो पहुंचा नहीं रहा हूं।'

अब विमला सचमुच गुस्सा हो गई। बोली, 'मैं नफा-नुकसान कुछ नहीं समझती। एक ही घर में तुम चार प्राणी, चारों अलग-अलग पार्टी के पीछे

पागल रहते हो, आपस में झगड़ा-बहस करते हो, यह सब मुझसे सहन नहीं किया जाता। तू तो यह पार्टी-वार्टी छोड़ दे।'

बादल ने गंभीर होकर जवाब दिया था, 'मैं घर में किसी के साथ भी झगड़ा करना नहीं चाहता, न मैं किसी के साथ बहस करना चाहता हूं। हां, पार्टी भी नहीं छोड़ सकता मैं।'

विमला ने कहा, 'हां, तू पार्टी क्यों छोड़ने लगा! फिर तो मुझे थोड़ा आराम मिल जायेगा न। समझ गई बेटा, मैं अच्छी तरह समझ गई। जब तक मैं मर नहीं जाती, तुम बाप-भाइयों की पार्टी नहीं छूटेगी। हे भगवान, मैं कहां चली जाऊं? मुझे उठा ले ईश्वर इस दुनिया से! यह भी भला कोई गृहस्थी है जिसमें पार्टीबाजी के अलावा कुछ भी नहीं बचा है।'

विमला का गला रुंध गया। आंखों से आंसू बहने लगे। वह फिर बोली, 'अब तो लगता है, मुझे भी एक पार्टी में शामिल होना पड़ेगा।'

मां की बातें सुनकर बादल कुछ विचलित-सा हो उठा। बोला, 'तुम इस तरह जी खराब क्यों करती हो? मैंने कहा न, मैं पिताजी से या भाइयों से झगड़ूगा नहीं।'

पर बादल की यह बात भी गलत साबित हुई। कभी कृपाल से, कभी दयाल से, तो कभी हरप्रसाद से उसकी बहस-झड़प होती ही रहती। बाहर की अशांति ने घर में पुख्ता नीड़ बना लिया था। बाहर जो भी गड़बड़ होती, उसका सारा हिसाब घर आकर चुकाया जाता। उनकी बातें सुन-सुनकर विमला समझ गयी थी कि बादल अपनी पार्टी के काम में सक्रिय रूप से भाग ले रहा है। पढ़ाई-वढ़ाई की बातें तो उसके दिमाग पर से बिल्कुल धुल गई थी।

शुरू-शुरू में कृपाल ने विमला से एक बार कहा था, 'बादला बहुत अधिक बिगड़ गया है। तुम उसे सावधान कर देना। वरना किसी दिन कोई कांड हो गया तो हाथ मलने के सिवाय कोई चारा नहीं रहेगा।'

विमला ने कहा था, 'तो मुझसे कहने क्यों आया है? अपने छोटे भाई को तुम खुद नहीं समझा सकते?'

'वह समझने-समझाने की सीमा को पार कर गया है।'

'और तू भीतर ही है। क्यों? तू अपनी पार्टी नहीं छोड़ सकता?'

ने कडुवे स्वर में कहा था।

कृपाल ने कहा, 'मुझे जो कहना था सो कह दिया। तुम्हें जानकारी देने का मेरा यही मतलब है कि बादल आग से खेल रहा है। मार-पीट और गुण्डागर्दी के अलावा उसे आज-कल और कुछ नहीं सूझता है।'

सभी का एक-दूसरे के विरुद्ध बस यह एक ही अभियोग था। विमला के पास आकर सिर्फ कृपाल ने ही बादल के विरुद्ध अभियोग लगाया हो, यह बात नहीं थी। दयाल ने भी वही सब बातें कही थीं तथा हरप्रसाद ने भी वही बातें बादल के विरोध में कहीं जो कृपाल ने कही थीं। हरप्रसाद ने कहा था, 'अपने छोटे बेटे से कह देना, अब भी समय है कि वह सम्हल जाय। उसके बहुत पंख निकल आये हैं। किसी दिन वे पंख जला दिये जायेंगे।'

हरप्रसाद के मुंह से ऐसी बातें सुन विमला का हृदय कांप उठा था, लेकिन साथ ही हरप्रसाद पर भी उसे कम गुस्सा नहीं आया था। उसने हरप्रसाद से कहा था, 'अपने बेटे को क्या तुम नहीं समझा सकते? तुम कोई बच्चे तो हो नहीं। तुम अपने बच्चों के सुख की खातिर पार्टी नहीं छोड़ सकते? अपने बेटे से कुछ कह भी नहीं सकते? तुम सब मुझे ही आ-आकर क्यों कहते हो?'

हरप्रसाद ने कहा, 'तुम यह सब नहीं समझोगी। मेरे पार्टी छोड़ने न छोड़ने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। मैं इनलोगों की तरह गुण्डई पार्टी में नहीं हूं। लेकिन बादला जिस तरह हवा में उड़ रहा है न, वह कुछ-न-कुछ कांड किये बिना नहीं मानेगा।'

विमला ने तिक्त-नाराजी भरे स्वर में कहा, 'मुझे कुछ कहने से फायदा नहीं है। मैं तो तुमलोगों के लिये एक नौकरानी से अधिक कुछ नहीं हूं। तुमलोगों की खिदमत कर रही हूं। तुमलोगों को तो बस एक-दूसरे से झगड़ने का ही काम है। मुझे तो अब तुमलोग दुनिया के तमाम झंझटों से मुक्ति दे दो।'

इतना कह विमला हरप्रसाद के सामने से चली गई थी, फिर भी हरप्रसाद की बड़बड़ाहट उसके कानों तक पहुंच रही थी—'बादला की मौत मंडरा रही है उसके सिर पर। पार्टी के दादाओं के उकसाने पर वह अपने को बहुत-कुछ समझने लगा है।....'

विमला का कलेजा फिर एक बार कांप उठा था। बाप होकर हरप्रसाद कैसी

बाग बह रहे हैं ! यही नहीं कि उन्होंने ऐसा सिर्फ बादल के लिये ही कहा हो; रूपाल और श्याम को भी वे इसी तरह कहते रहते थे। तो क्या पितृत्व से भी बढ़कर है पार्टी ? भाइयों के मन में क्या जरा-सा भी भ्रातृ-प्रेम नहीं है ? सभी मिलकर एक सुखी गृहस्थी बना सकते थे, वह तो हुआ नहीं; एक-दूसरे के विरुद्ध बस शिकायत ही करते रहते हैं। अभियोग लगाते रहते हैं।

विमला ने बादल से कहा, 'तेरे पिताजी तथा भाई तेरी बहुत शिकायत कर रहे थे। क्या तुम कोई भयानक काम करते हो जिसमें कोई प्रमुख मार दी जाने की संभावना है ?'

बादल ने कहा, 'काड-घांड कुछ नहीं होनेवाला, मां। वे लोग चाहते हैं कि खुद तो पार्टीबाजी करते रहें और मैं चुपचाप बैठा रहूं। पर मैं ऐसा क्यों करने लगा ? उनके डराने-धमकाने से मैं रत्ती भर भी नहीं डरता। अधिक चूं-चपड़ करेंगे तो हम भी चुप बैठनेवाले नहीं हैं।'

फिर भी विमला ने उसे डांटते हुए कहा था, 'तू उनलोगों से बहस ही क्यों किया करता है ?'

बादल ने जवाब दिया, 'मैं क्यों उनसे बहस करने लगा ? वे ही कमर कस-कसकर आते हैं।'

'तू क्या अपने भाइयों और अपने पिताजी के साथ भी मिल-जुलकर नहीं रह सकता ?'

'ओह, जैसे पिताजी और भैया लोग तो मुझसे मिलकर ही रहते है ! दरअसल, पार्टी के मामले में किसी के साथ किसी का भी मेल-जोल संभव नहीं है।' बादल एक पल के लिये चुप रह गया, फिर बोला, 'मैं पार्टी के साथ बेईमानी नहीं कर सकता। चाहे इसके लिये भाई तथा पिताजी मुझे जितना भी क्यों न डांटें। वे लोग खुद तो आपस में मार-पीट करते रहते हैं, और मुझ पर रोब गांठना चाहते हैं। पर मैं भी किसी की परवाह नहीं करता।'

तब विमला ने अपना अन्तिम अमोघ अस्त्र छोड़ा। बोली, 'बाप को नाराज करके तू यह सब कर रहा है; कल को तुझे इस घर से चले जाने को कह बैठे तो ?'

बादल ने तत्काल जवाब दिया था, 'तो चला जाऊंगा। लेकिन इस डर -

पिताजी का या पिताजी की पार्टी का समर्थन नहीं कर सकता।'

विमला अजीब उलझन में फंस गई थी। उसके मन को किसी तरह भी शांति नहीं थी। इधर कुआं, उधर खाई जैसी बात थी। अपने ही पति और पुत्रों में से किसी को भी समझा नहीं सकती वह। एक ही घर के चार सदस्यों में चार पार्टियों का झगड़ा चल रहा था। सब एक साथ बैठकर भोजन करना तक भूल गये थे। अगर किसी दिन संयोगवश सब एक साथ खाना खाने भी बैठते, तो खामोशी से खाकर उठ खड़े होते। कोई किसी के साथ एक शब्द भी नहीं कहता, मानो हाड़-मांस के निर्जीव पुतले बैठे हों।

□

'मां, मां, कहां गई ?'

अब दयाल पुकार रहा है। इससे पहले कृपाल पुकार रहा था। उधर कब से हरप्रसाद भी पुकार रहे हैं। पर विमला ने किसी की पुकार का जवाब नहीं दिया। आज के पहले उनके पुकारने पर वह जवाब दिये बिना नहीं रह सकती थी। पर आज वह किसी की बात का भी जवाब नहीं देगी। यहीं खड़ी-खड़ी वह उस उपेक्षित, टूटे हुए शहीद-स्मारक की ओर ही देखती रहेगी। बादल का खून उसी जगह हुआ था।

आकाश काले बादलों से ढका हुआ है। सनसनाती हवा के साथ-साथ मोटी-मोटी बूंदें भी पड़ने लगी हैं। हवा के झोंकों से जवाकुसुम का पेड़ विमला के मुंह तथा सारे शरीर पर झुका जा रहा है। पर वह वहां से जरा भी नहीं खिसकी। आज वह फिर उस रसोईघर में नहीं जा सकती। आज से अट्ठारह साल पहले के बादल के जन्म-स्थान यानी जच्चाघर में जाते ही उसके पेट में ऐंठन-सी होने लगती है। जी कैसा-कैसा हो उठता है। वह सीधी खड़ी रहने में भी असमर्थ है। मानो पेट में कुछ हिलता है, इधर-उधर होता है। पेट में बादल है क्या ? तो क्या, बादल अभी उसके गर्भ में ही है ? विमला दांत से होंठ काटकर दर्द सहने की कोशिश करती है। तो क्या फिर दर्द उठ रहे हैं ?

उस स्मारक की ओर देखते-देखते विमला की आंखों के सामने बादल का क्षत-विक्षत, लहू-लुहान शरीर मूर्त हो उठता है और तब उसे याद आती हैं सभी द्वारा बादल को डांटने और धमकी दिये जाने की बातें। उसने अपने ही दिल से प्रश्न किया, किसने मारा है बादल को ? कृपाल के दल ने ? या दयाल के

दल ने ? या हरप्रसाद के दल ने ? सभी ने इस बात से इन्कार कर दिया है कि उनके दल ने बादल को मारा है। मुनिम ने शक में जिनको पकड़ा था उन्होंने भी इस बात से इन्कार किया है। जबकि उसे चेतावनी-धमकी इन सभी ने दी थी। कृपाल, दयाल एवं हरप्रसाद की पार्टियों के अलावा और भी पार्टियां हैं, पर किसी ने भी बादल को मारने की बात स्वीकार नहीं की है। विमला को भी पता नहीं कि बादल के खून में किसने हाथ रंगे हैं।

चाहे जितना भी अस्वीकार क्यों न करें, पर किसी-न-किसी पार्टी ने तो मारा ही है बादल को। वह कौन-सी पार्टी है ? सबसे ज्यादा शक तो विमला को हरप्रसाद, कृपाल तथा दयाल की पार्टीवालों पर ही है। क्योंकि उन तीनों ने ही कहा था, 'बादल के सिर पर मौत मंडरा रही है।' जबकि वे विमला के ही पति और पुत्र हैं। क्या बादल हरप्रसाद का बेटा नहीं था ? दयाल, कृपाल का भाई नहीं था ? सिर्फ किसी एक पार्टी का कोई एक लड़का ही था ? उनके लिये क्या वह उनकी विरोधी पार्टी का लड़का मात्र ही था ? अगर यही बात है, तो आज विमला भी उनकी पुकार पर यहां से हिलेगी तक नहीं।

विमला को साफ सुनाई दे रहा था कि वे सभी यानी दयाल, कृपाल और हरप्रसाद उसे बारी-बारी से पुकार रहे हैं।

'मां, ओ मां !'

'मां, कहां गई ?'

'अई, कहां हो ? सुनती हो ?'

विमला सब समझ रही है कि वे लोग उसे कभी कमरे में, तो कभी रसोईघर में, तो कभी आंगन में ढूंढते फिर रहे हैं। फिर दयाल ने रसोईघर के पास से चिल्लाकर बना की मां को पुकारा, वह भी सुना विमला ने। दयाल की आवाज आ रही थी, 'मौसी, ओ मौसी !'

बना की मां की आवाज सुनाई पड़ी, 'क्या बात है रे दयाल ?'

'मां आपके यहां आई है क्या ?'

'नहीं तो। हमारे यहां तो सुबह से एक बार भी नहीं आई। कहां गई तेरी मां ?'

'क्या पता ? यहां तो नहीं दीख रही है। रसोईघर का दरवाजा भी खुला पड़ा है। कड़ाही की सारी सब्जी कुत्ता खा गया है, और खाना-वाना कुछ बना नहीं है।'

कना की मां की उद्विग्न आवाज सुनाई पड़ती है, 'यह क्या कह रहा है तू ? तेरी मां तो ऐसी लापरवाही कभी नहीं करती। देख, ढूंढ़ तो सही, कहां गई ? मैं भी आती हूं।'

पर विमला को जाने के लिये कहां जगह है ? वह तो अपने बेटे की उसी टूटी हुई शहीद-वेदी की ओर एकटक देख रही है जहां तीन महीने पहले बादल के दोस्त उसे बुलाकर ले गये थे। बादल के उन दोस्तों ने भी सिर्फ स्मारक बनवा दिया और छुट्टी पाली। अब उनको भी इधर आने की या यह देखने की फुरसत कहां है कि उनका बनाया शहीद-स्मारक तीन महीने में ही कैसे टूट गया है ! वे तो जैसे पहले किया करते थे, वैसे ही अब भी अपनी पार्टी का काम कर रहे हैं। केवल वही क्यों, इस घर में बादल के बाप-भाई भी तो यही सब कर रहे हैं।

किसी ने कुछ नहीं खोया, सिर्फ विमला ने खोया है। उसी ने उसे दस महीने गर्भ में धारण किये रखा। अट्ठारह साल पहले, आज के दिन, इस वक्त तक, मेघू की मां ने बादल को धो-पोंछकर, उसकी छाती के पास सटाकर सुला दिया था।

□

'बड़ी बहू !'

हरप्रसाद छाता ताने उसके पास पहुंच चुके थे। हरप्रसाद अपने भाइयों में सबसे बड़े थे। संयुक्त परिवार होने के कारण विमला बड़ी बहू के नाम से ही जानी जाती थी। हरप्रसाद भी कभी-कभी उसे इस नाम से पुकारा करते थे।

विमला ने कोई जवाब नहीं दिया।

हरप्रसाद ने कहा, 'हम सब तुम्हें कब से हर जगह ढूंढ रहे हैं, और तुम यहां खड़ी क्या कर रही हो ?'

हरप्रसाद को कुछ बताने की जरूरत नहीं। विमला जानती है कि हरप्रसाद को यह याद नहीं है कि आज बादल का जन्म-दिवस है। दोनों लड़कों को

भी याद नहीं है। पर विमला नहीं भूल पाती कि किस लड़के को उसने किस दिन जन्म दिया था। तीनों लड़कों में से जब जिसका जन्म-दिन आता है, विमला थोड़ी-सी खीर बनाकर उसे खिला देती है। इतने वर्षों से वह ऐसा ही करती आई है। पिछली साल आज के दिन उसने बादल को खीर बनाकर खिलाई थी, पर अब बादल के लिये विमला को कभी खीर नहीं बनानी पड़ेगी।

हरप्रसाद की आवाज में असहाय आश्चर्य था, क्योंकि वे विमला को बिल्कुल भी समझ नहीं पा रहे थे। वे तो बस बोले ही जा रहे थे, 'हमारे लिये खाना नहीं बनाया। आधी कच्ची सब्जी छोड़ आई, वह भी जल गई होगी। यह सब क्या ढंग हैं तुम्हारे ?'

विमला के ढंग हरप्रसाद नहीं समझ सकता। वह कुछ कहना-समझाना भी नहीं चाहती। इस वक्त उसकी आंखों के सामने तो शिशु बादल खेल रहा है। उसके बाद बादल बड़ा हुआ। बादल स्कूल से आ रहा है। मां के पास दो पैसों के लिये पहुंचे जिद करता है। इस वक्त विमला को अपनी आंखों के सामने सिर्फ बादल····बादल, बस बादल-ही-बादल दिख रहा है। औरों के लिये तो वह एक पार्टी का लड़का मात्र था। संतान तो बस विमला की था।

हरप्रसाद की आवाज सुन कृपाल तथा दयाल भी वहां आ पहुंचे। वे भी चकित-से मां की ओर देख रहे थे, पर आपस में कोई भी बोल नहीं रहा था। विमला को यों ठूंठ की तरह खड़े देखकर भी आपस में बात नहीं कर पा रहे हैं।

कृपाल ने कहा, 'मां, तुम यहां क्यों खड़ी हो ? क्या हो गया ?'

सभी अवाक् हैं। कोई भी विमला को समझ नहीं पा रहा है जबकि वे विमला के ही पति और पुत्र हैं। विमला अपने पति और पुत्रों को छोड़कर कहीं नहीं जा सकती, पर आज वह घर में होते हुए भी उनके साथ नहीं है। विमला आज बादल के साथ ही रहेगी। बादल उसके हृदय में है।

हरप्रसाद ने कहा, 'बड़ी बहू, भीतर चलो। यहां खड़ी-खड़ी मत भीगो।'

विमला की नजरें टूटे हुए स्मारक पर जमी थीं। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा, 'नहीं। मैं नहीं जाऊंगी।'

'क्या पता ? यहां तो नहीं दीख रही है। रसोईघर का दरवाजा भी खुला पड़ा है। कड़ाही की सारी सब्जी कुत्ता खा गया है, और खाना-वाना कुछ बना नहीं है।'

कना की मां की उद्विग्न आवाज सुनाई पड़ती है, 'यह क्या कह रहा है तू ? तेरी मां तो ऐसी लापरवाही कभी नहीं करती। देख, ढूंढ़ तो सही, कहां गई ? मैं भी आती हूं।'

पर विमला को जाने के लिये कहां जगह है ? वह तो अपने बेटे की उसी टूटी हुई शहीद-वेदी की ओर एकटक देख रही है जहां तीन महीने पहले बादल के दोस्त उसे बुलाकर ले गये थे। बादल के उन दोस्तों ने भी सिर्फ स्मारक बनवा दिया और छुट्टी पाली। अब उनको भी इधर आने की या यह देखने की फुरसत कहां है कि उनका बनाया शहीद-स्मारक तीन महीने में ही कैसे टूट गया है ! वे तो जैसे पहले किया करते थे, वैसे ही अब भी अपनी पार्टी का काम कर रहे हैं। केवल वही क्यों, इस घर में बादल के बाप-भाई भी तो यही सब कर रहे हैं।

किसी ने कुछ नहीं खोया, सिर्फ विमला ने खोया है। उसी ने उसे दस महीने गर्भ में धारण किये रखा। अट्ठारह साल पहले, आज के दिन, इस वक्त तक, मेघू की मां ने बादल को धो-पोंछकर, उसकी छाती के पास सटाकर सुला दिया था।

□

'बड़ी बहू !'

हरप्रसाद छाता ताने उसके पास पहुंच चुके थे। हरप्रसाद अपने भाइयों में सबसे बड़े थे। संयुक्त परिवार होने के कारण विमला बड़ी बहू के नाम से ही जानी जाती थी। हरप्रसाद भी कभी-कभी उसे इस नाम से पुकारा करते थे।

विमला ने कोई जवाब नहीं दिया।

हरप्रसाद ने कहा, 'हम सब तुम्हें कब से हर जगह ढूंढ रहे हैं, और तुम यहां खड़ी क्या कर रही हो ?'

हरप्रसाद को कुछ बताने की जरूरत नहीं। विमला जानती है कि हरप्रसाद को यह याद नहीं है कि आज बादल का जन्म-दिवस है। दोनों लड़कों को

भी याद नहीं है। पर विमला नहीं भूल सकती कि किस लड़के को उसने किस दिन जन्म दिया था। तीनों लड़कों में से जब जिसका जन्म-दिन आता है, विमला थोड़ी-सी खीर बनाकर उसे खिला देती है। इतने वर्षों से यह ऐसा ही करती आई है। पिछली साल आज के दिन उसने बादल को खीर बनाकर खिलाई थी, पर अब बादल के लिये विमला को कभी खीर नहीं बनानी पड़ेगी।

हरप्रसाद की आवाज में असहाय आश्चर्य था, क्योंकि वे विमला को बिल्कुल भी समझ नहीं पा रहे थे। वे तो बस बोले ही जा रहे थे, 'हमारे लिये खाना नहीं बनाया। आधी कच्ची सब्जी छोड़ आई, वह भी कुत्ता खा गया। यह सब क्या ढंग हैं तुम्हारे ?'

विमला के ढंग हरप्रसाद नहीं समझ सकता। वह कुछ कहना-समझाना भी नहीं चाहती। इस वक्त उसकी आंखों के सामने तो शिशु बादल खेल रहा है। उसके बाद बादल बड़ा हुआ। बादल स्कूल में जा रहा है। मां के पास दो पैसों के लिये पहुंचे जिद करता है। इस वक्त विमला को अपनी आंखों के सामने सिर्फ बादल""बादल, बस बादल-ही-बादल दिख रहा है। औरों के लिये तो वह एक पार्टी का लड़का मात्र था। संतान तो वह विमला की था।

हरप्रसाद की आवाज सुन कृपाल तथा दयाल भी वहां आ पहुंचे। वे भी चकित-से मां की ओर देख रहे थे, पर आपस में कोई भी बोल नहीं रहा था। विमला को यों ठूंठ की तरह खड़े देखकर भी आपस में बात नहीं कर पा रहे हैं।

कृपाल ने कहा, 'मां, तुम यहां क्यों खड़ी हो ? क्या हो गया ?'

सभी अवाक् हैं। कोई भी विमला को समझ नहीं पा रहा है जबकि वे विमला के ही पति और पुत्र हैं। विमला अपने पति और पुत्रों को छोड़कर कहीं नहीं जा सकती, पर आज वह घर में होते हुए भी उनके साथ नहीं है। विमला आज बादल के साथ ही रहेगी। बादल उसके हृदय में है।

हरप्रसाद ने कहा, 'बड़ी बहू, भीतर चलो। यहां खड़ी-खड़ी मत भीगो।'

विमला की नजरें टूटे हुए स्मारक पर जमी थीं। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा, 'नहीं। मैं नहीं जाऊंगी।'

विमला का जवाब सुनकर तीनों ही पार्टी-मेम्बरों की चकित नजरें पल भर को आपस में मिल गईं। कृपाल ने कहा, 'खाना नहीं बनाया। अब हम क्या खायें?'

विमला ने साफ एवं दृढ़ स्वर में कहा, 'आज मैं तुमलोगों को खाना नहीं दे सकती।'

तीनों पार्टी के लोग आश्चर्य में डूब गये। आज विमला उनके लिये पार्टी से भी बड़ी उलझन बनकर उपस्थित हो गई थी। दयाल ने कहा, 'तो हमलोग क्या करें अब?'

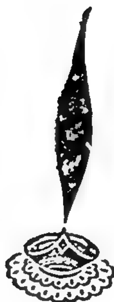
विमला ने कहा, 'तुमलोग अपनी पार्टी का काम करो जाकर। मुझे मत छेड़ो।'

अंतहीन विस्मय में डूबे तीनों व्यक्ति खामोश खड़े थे। विमला उनके सामने से हटकर नागफनी की बाड़ के पास जाकर खड़ी हो गई। तीनों ने ही एक-दूसरे की ओर देखा। तीनों की नजरों में अपरिचय की छाप थी। मानो पति, पत्नी को नहीं पहचानता। लड़के मां को नहीं पहचानते। अब उनके चेहरे पर ऐसे भाव थे मानो विमला से कुछ कहने की हिम्मत नहीं हो रही हो। यह पहली बार ही ऐसा हुआ था जब वे विमला के ढंग देखकर सिर्फ चकित ही नहीं हो रहे थे बल्कि उन्हें डर भी लग रहा था।

थोड़ी देर और खड़े रहकर तीनों ही व्यक्ति वहां से चले गये। वर्षा की बौछार और हवा के तेज झोंकों के कारण वहां खड़े रहना मुश्किल था। तीनों ही व्यक्ति एक असहाय अस्थिरता एवं आश्चर्य में डूबे एक-एक कर चले गये।

विमला उसी तरह खड़ी है। बरसात के पानी से वह धुली जा रही है। पता नहीं वह क्या चीज है जो उसके गले के भीतर से बाहर की ओर निकल पड़ना चाहती है। उसकी आंखों से आंसू झर रहे हैं जो उसके चेहरे पर से बहती बरसात की धार में मिल जाते हैं। विमला छाती पर दोनों हाथ रखकर पुकार उठती है, 'बादल, बादल, तू मेरे पास है। मेरे ही पास रह तू ....।'

—



इस संकलन के कथाकार

संक्षिप्त परिचय

■



■ विमल मित्र

जन्म : १८ मार्च १९१२। कलकत्ता विश्वविद्यालय से बंगला साहित्य में एम० ए० किया। १९४५ में 'दिनेर-पर-दिन' शीर्षक प्रथम कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ। १९६२ में मतिलाल पुरस्कार और १९६४ में रवीन्द्र पुरस्कार प्राप्त किया।

आपके दर्जनों उपन्यासों और कहानियों के हिन्दी-अनुवाद हो चुके हैं जिनमें कुछ प्रमुख उपन्यास—'साहब, बीबी, गुलाम', 'खरीदी कौड़ियों के मोल', 'इकाई, दहाई, सैकड़ा', 'पटरानी', 'नायिका', 'मन ही में रही', 'काजल', 'मुग्सतिया' आदि हैं। कई उपन्यासों और कहानियो पर हिन्दी में भी फिल्में बनी हैं और दर्शकों द्वारा पसन्द की गयी हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि रवीन्द्रनाथ और शरत्चन्द्र के बाद हिन्दी-पाठकों में सर्वाधिक लोकप्रिय आप ही रहे हैं।

पूर्णतः लेखन-जीवी। पता : २९।१।१, चेतला सेण्ट्रल रोड, कलकत्ता-२७।



■ आशापूर्णा देवी

जन्म : ८ जनवरी १९०९। पिता श्री हरेन्द्रनाथ गुप्त बंगाल के एक अच्छे चित्रकार थे। पारिवारिक संस्कारों के कारण अल्प आयु से ही साहित्य के प्रति प्रबल आकर्षण के फलस्वरूप गृह-कार्य के साथ-साथ साहित्य-साधना में भी रत।

बंगला में अनेक उपन्यास और कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, और आप बंगला कथा-साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय कथा-लेखिका हैं। हिन्दी में भी आपकी कृतियों के अनुवाद हुए हैं जिनमें 'रात का पंछी' शीर्षक उपन्यास भी



■ दिव्येन्दु पालित

जन्म : १९३९। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० पास करके कलकत्ता के सुप्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक-पत्र 'हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड' के सम्पादकीय विभाग में कार्य शुरू किया। आजकल एक व्यापारिक प्रतिष्ठान में अधिकारी के पद पर हैं।

बंगला के युवा कथाकारों में आपका एक विशिष्ट स्थान है। अब तक पांच उपन्यास, एक कहानी-संग्रह और एक कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। पता : १४।२, हिन्दुस्थान रोड, कलकत्ता-२९।



■ मिहिर आचार्य

जन्म: १९२७, दिनाजपुर [जो अब बंगला देश में है]। कलकत्ता विश्वविद्यालय से बंगला साहित्य में एम० ए० किया। सम्प्रति अध्यापन के साथ-साथ गत आठ वर्षों से बंगला की प्रथम श्रेणी की साहित्यिक कहानी-पत्रिका 'शुकसारी' के सम्पादक हैं।

बारह उपन्यास और चार कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कहानी-संग्रहों में 'आज-कल-परसों' और 'अपराह्न की नदी' बहु-चर्चित हुए हैं। इनके अलावा, 'पूर्व बांगलार गल्प संग्रह' और 'पूर्व बांगलार कविता' शीर्षक दो संकलनों का सम्पादन भी किया है। पता : सम्पादक 'शुकसारी', १७२।३५, आचार्य जगदीशचन्द्र बोस रोड, कलकत्ता-१४।

■ सुनील गंगोपाध्याय

बंगला की आज की पीढ़ी के सर्वाधिक चर्चित नवयुवक कथाकार। बंगाल में भूखी पीढ़ी के आंदोलन के समय आप उसके एक प्रमुख सूत्रधार थे। इस अल्प आयु में ही विदेश-भ्रमण भी कर चुके हैं। सत्यजित राय द्वारा निर्देशित

बहुचर्चित फ़िल्म 'दिवा रात्रिर काव्य' आप ही के उपन्यास पर आधारित थी। कई उपन्यास और कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वर्तमान में बंगाल के सुप्रसिद्ध समाचार-पत्र प्रतिष्ठान 'आनन्द बाजार पत्रिका' और 'देश' के सम्पादकीय विभाग से सम्बद्ध हैं। पता : ३७।२, गड़ियाहाट रोड, कलकत्ता-१९।



■ प्रमथनाथ बीशी

बंगला के ख्यातिप्राप्त बुजुर्ग कथाकार। व्यंग्य-लेखन में आपको विशेष महारत हासिल है, और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि बंगाल के आप सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य-कथा-लेखक हैं। कटु और तीखा व्यंग्य नहीं, मीठी छुरी की तरह होते से मगर सही जगह और गहरी मार करनेवाला होता है आपका व्यंग्य। बंगला में कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी में भी कई व्यंग्य-रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। पता : १६२।३६, लेक गार्डेन्स, कलकत्ता-४५।

■ आशिम राहा

बंगला की नई कथा-पीढ़ी की एक विशिष्ट हस्ताक्षर। मानवीय संवेदनाओं के प्रति आपका हृदय जहाँ पूरी तरह सहृदयतापूर्ण है, वहीं दूसरी ओर आज के समाज में अनुचित ऊँची अव्यवस्था, उग्र असमता और दुष्प्रवृत्ति के खिलाफ से आपका मस्तिष्क पूर्णतः निर्मम और तटस्थ है। बोलचाल की भाषा और यथार्थवादी शैली आपके कथा-लेखन की विशेषता है। पता : १०।१ बद्रीदास टेम्पल रोड, कलकत्ता-४

■ समरेश बसु

जन्म : १९२३। बंगला के सातवें दशक के सर्वाधिक चर्चित और विवादास्पद युवा कथाकार। भावुकता से दूर हटकर, यथार्थवादी शैली एवं भाषा तथा चालू जैसी शैली और निर्भयता से लिखनेवाले समरेश बसु वर्तमान बंगाल के बड़े कथाकार हैं। 'विवर' [हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित] और 'प्रजापति

शीर्षक उपन्यासों पर अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं, कॉफी-हाउसों और शिक्षा-संस्थाओं में न केवल गर्मागर्म वाद-विवाद ही हुए, वरन् अदालत में मुक़दमें भी चलाये गये थे। 'गंगा', 'बाघिनी', 'सात भुवनेर पार' आदि आपके अन्य चर्चित उपन्यास हैं। बंगला में कई उपन्यासों पर बहु-चर्चित फिल्में बनी हैं, और बन रही हैं। पूर्णतया लेखन-जीवी। पता : द्वारा-आनन्द पब्लिशर्स, ४५ बेनियाटोला लेन, कलकत्ता-६।



■ पुष्पा देवड़ा

जन्म : १९४४, पश्चिम बंगाल के रानीगंज में। बंगला से कई कहानियों और उपन्यासों के अनुवाद किये जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में एवं प्रकाशकों से प्रकाशित हुए।

अजितकृष्ण बसु लिखित जादू-कहानियां 'धर्मयुग' के कई अंकों में प्रकाशित हुईं। विमल मित्र का उपन्यास 'काजल' 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के एक ही अंक में छपा। 'अणिमा' के 'बंगला प्रणय कहानी विशेषांक' और 'भारतीय प्रणय कहानी विशेषांक' के लिये कई बंगला कहानियों के अनुवाद किये। इनके अलावा, 'अणिमा' के 'बंगला देश कथा विशेषांक' के साथ-साथ प्रस्तुत 'समकालीन पश्चिम बंग कथा विशेषांक' की सब कहानियां भी आपके द्वारा ही अनूदित हैं।

प्रकाशकों में विमल मित्र के 'पटरानी', 'नायिका' और 'काजल' तथा गजेन्द्रकुमार मित्र का 'नारी और नियति' राजपाल एण्ड संज से, वाणी राय का 'तनिमा-जातक' अपरा प्रकाशन से तथा ताराशंकर वन्द्योपाध्याय का 'कंचनमाला' हिन्दी बुक सेन्टर से प्रकाशित हुए हैं। पता : अणिमा कार्यालय, पुलिस स्मारक, जयपुर-४।